नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक अखबार • वर्ष 7 अंक 10
नवम्बर 2005 • 3 रुपये • 12 पृष्ठ

सुप्रीम कोर्ट का फैसला : नियमित और दिहाड़ी कर्मचारी में फर्क अन्याय व असमानता पर टिकी व्यवस्था में अदालत न्याय और समानता की पक्षधर नहीं हो सकती

सम्पादक

मजदूर विरोधी-फैसलों के लगातार जारी सिलसिले में नयी कड़ी जोड़ते हुए सुप्रीम कोर्ट ने बीते 23 अक्टूबर को एक नया फैसला सुनाया। उसने फैसला दिया कि दिहाड़ी कर्मचारी को सरकार के नियमित कर्मचारी के समान नहीं माना जा सकता। समान काम के लिए समान वेतन का सिद्धान्त उस पर लागू नहीं होता। न्यायमूर्ति एस एन वीरयावा, न्यायमूर्ति ए आर लक्ष्मणन और न्यायमूर्ति एस एच कपाड़िया की खण्डपीठ ने पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय के एक फैसले के खिलाफ दायर याचिकाओं को स्वीकार करते हुए यह व्यवस्था दी।

सबसे पहले उन तर्कों को जान लें जिनके आधार पर सुप्रीम कोर्ट की खण्डपीठ ने उपरोक्त फैसला सुनाया। सर्वोच्च न्यायालय का बुनियादी तर्क यह है कि संविधान के अनुच्छेद 14 को हर मामले में एक ही तरह से लागू नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 14 "चयनित व्यक्तियों या समूहों और उन व्यक्तियों या समूहों के बीच गुणों या चारित्रिक विशेषताओं" के आधार पर विवेकसम्मत भेद करने की इजाजत देता है जो चयनित नहीं हुए हैं।

खण्डपीठ ने अपने निर्णय में कहा है कि सरकारी नौकरियों के मामले में प्रशासनिक कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए योग्यता या अनुभव तनख्वाहों में भेद करने का एक जायज़ आधार हो सकता है। फैसले में आगे दलील दी गयी है कि अगर योग्य लोगों को ऊँची तनख्वाहें नहीं दी जायेंगी तो उन्हें कोई प्रोत्साहन नहीं मिलेगा और नतीजतन लोग हताश होंगे कुछ मामलों में तो केवल इसी तथ्य से फर्क पड़ जाता है कि कोई व्यक्ति भर्ती की औपचारिक प्रक्रिया से नहीं गुजरा है।

खण्डपीठ ने अपने निर्णय में पदनाम की भी व्याख्या की है। उसने निर्णय में लिखा है कि "अगर शैक्षिक योग्यताएँ अलग-अलग हैं, तो भी यह सिद्धान्त (समान काम के लिए समान वेतन का सिद्धान्त–स.) लागू नहीं हो सकता। केवल इस पदनाम से कि कोई व्यक्ति बढ़ई या क्राफ्ट्समैन है, यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि वह नियमित नौकरी के रूप में काम कर रहे बढ़ई या क्राफ्ट्समैन के समान काम कर रहा है।"

खण्डपीठ की राय में "यह केवल शारीरिक क्रियाकलाप की ही तुलना नहीं है। 'समान काम के लिये समान वेतन' का सिद्धान्त लागू करने के लिए किसी नौकरी के विभिन्न आयामों पर विचार करना जरूरी है। अलग-अलग नौकरियों के लिये आवश्यक परिशुद्धता और निपुणता अलग-अलग हो सकती है इसे केवल कार्य की मात्रा से नहीं मापा जा सकता। विश्वसनीयता और उत्तरदायित्व के मामले में इसमें गुणात्मक अन्तर हो सकता है कार्यों की प्रकृति एक जैसी हो सकती है लेकिन उत्तरदायित्वों से फर्क पड़ जाता है।" सुप्रीम कोर्ट ने उच्च न्यायालय को आड़े हाथों लेते हुए कहा कि इन मामलों में उसने "समान काम के लिए समान वेतन" के सिद्धान्त को आँख मूँदकर लागू किया है और उसे इस पर पुनर्विचार करना चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले ने देशभर में सरकारी विभागों में सालों से काम कर रहे लाखों दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों की उम्मीदों पर कुठाराघात कर दिया है। पिछले डेढ़ दशक से भूमण्डलीकरण की मजदूर विरोधी नीतियों पर चल रही सरकारों से उनकी उम्मीदें पहले ही टूट चुकी थीं। उन्होंने देश के सर्वोच्च न्यायालय पर आखिरी उम्मीदें टिका रखी थीं। लेकिन इस फैसले ने उनके लिए सारे दरवाजे बन्द कर दिये हैं।

सर्वोच्च न्यायालय का यह फैसला सीधे-सीधे देश की पूँजीपरस्त सरकारों व देशी-विदेशी पूँजीपतियों को फायदा पहुँचाने वाला है। निजी क्षेत्र के उपक्रम तो पहले से ही "समान काम के लिये समान वेतन" के सिद्धान्त की धज्जियाँ उड़ाते थे, अब सरकारी उपक्रमों के लिये भी मनमाने वेतनमान लागू करने का रास्ता साफ हो गया है। सरकारी कर्मचारियों के वेतनमान में अनेक तरह की विसंगतियाँ पहले से ही मौजूद थीं जिनके खिलाफ संघर्ष करने के लिए कर्मचारियों के पास "समान काम के लिए समान वेतन" सिद्धान्त के रूप में जो सबसे मजबूत हथियार मौजूद था, सुप्रीम कोर्ट ने उसे ही छीन लिया है।

सुप्रीम कोर्ट ने इस घोर मजदूर विरोधी फैसले के पक्ष में जिन तर्कों का सहारा लिया है वे अब तक चली आ रही समानता और न्याय की पूँजीवादी परिभाषाओं को भी पूरी तरह खारिज कर देते हैं। दिहाड़ी और नियमित कर्मचारी के बीच फर्क करने के लिए जिन "गुणात्मक" अन्तरों की बातें की गयी हैं वे किसी बेहद कूपमण्डूक बुद्धिजीवी के तर्कों के समान हैं।

कोई कूपमण्डूक बुद्धिजीवी ही यह तर्क दे सकता है कि किसी व्यक्ति की योग्यता की परख

(पेज 8 पर जारी)

सरकार ने बढ़ाया न्यूनतम वेतन, पर लाभ किसको?

(कार्यालय प्रतिनिधि)

केन्द्र सरकार ने कुछ माह पूर्व वेतन भुगतान (संशोधन) विधेयक 2002 को पारित कर दिया। इसके अनुसार न्यूनतम वेतन 1,600 रुपये से बढ़कर 6,500 रुपये प्रतिमाह होगा। इसके साथ ही विधेयक में न्यूनतम वेतन का भुगतान न करने पर सख्त सजा का प्रावधान भी किया गया है। इस प्रकार उसने अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री कर ली।

अब सवाल यह उठता है कि जहाँ देश में निजीकरण-छँटनी-तालाबन्दी-ठेकाकरण का पूरा दौर चल रहा है, मालिकों को मनमानी की खुली छूट मिल रही है वहाँ न्यूनतम वेतन की इस नयी सीमा की बात वेईमानी नहीं तो और क्या है? ज्यादातर कारखानों में ठेकेदारी के तहत मजदूरों की बड़ी आबादी 40-50 रुपये दिहाड़ी पर खट रही है। नामी-गिरामी बड़ी कम्पनियाँ भी 60 रुपये से 90 रुपये तक की दिहाड़ी बमुश्किल दे रही हैं–और उस पर भी पूरे महीने की ड्यूटी नहीं। जहाँ थोड़े बहुत नियमित मजदूर हैं भी (कुछ एक कारखानों को छोड़कर) वहाँ अधिकतम 1600 से 4000 रुपये तक का वेतन भुगतान मिल रहा है, वह भी काफी संघर्षों के बाद।

फिर बिल्ली के गले में घण्टी बाँधेगा कौन? न्यूनतम वेतन की इस नयी सीमा को कौन लागू कराएगा कारखानों में? कानून तो ढेरों बने हैं–औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947; कारखाना एक्ट; सुरक्षा के प्रावधान, भविष्य निधि, मेडिकल सुविधा आदि, आदि। 58 साल आजादी के बीत जाने के बाद भी इनमें से कितना लागू हो पाया है आज तक? लगभग एक साल से 'न्यूनतम भुगतान (संशोधन) विधेयक' पारित हो चुका है,

(पेज 10 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

अक्टूबर क्रान्ति की वर्षगाँठ पर
अक्टूबर क्रान्ति की चौथी वर्षगाँठ – लेनिन पृ. 6
7 नवम्बर - एक नयी ऐतिहासिक तिथि – अल्बर्ट रीस विलियम्स पृ. 9
पाब्लो नेरूदा / नाज़िम हिकमत की कविताएँ पृ. 11
मऊ दंगाः धर्मध्वजाधारियों का खूनी कारनामा पृ. 3
सूचना का अधिकार : जनता का भरोसा बहाल करने की सरकारी कवायद पृ. 4
पुलिसिया दरिन्दगी के किस्से पृ. 11
रोजगार का सपना बेचते नये सौदागर पृ. 12
अमेरिकी फौजी मशीनरी का बर्बर नस्लवादी कारनामा पृ. 12

अक्टूबर क्रान्ति की 88वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

अक्टूबर क्रान्ति की मशाल से नई क्रान्तियों का दावानल भड़काना होगा

अब से ठीक 88 वर्ष पहले, 1917 में (पुराने कैलेण्डर के मुताबिक अक्टूबर में और नये कैलेण्डर के मुताबिक नवम्बर में) मेहनतकश अवाम ने, क्रान्तिकारी मजदूर वर्ग की अगुआई में, रूस में पूँजीपतियों और सभी सम्पत्तिवान लुटेरों की सत्ता को उखाड़ फेंका था और पहली बार महान लेनिन और उनकी बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना की थी।

मानव समाज के वर्गों में बँटने के बाद हजारों वर्षों के इतिहास में यह पहली ऐसी क्रान्ति थी जिसमें राज्यसत्ता एक शोषक वर्ग से दूसरे, नये शोषक वर्गों के हाथ में नहीं, बल्कि मेहनतकश शोषित-उत्पीड़ित जनता के हाथों में आई थी।

मजदूरों ने पहली बार 1871 में पेरिस कम्यून के रूप में अपना राज कायम किया था। केवल 72 दिनों तक टिक सकी प्रथम सर्वहारा सत्ता को यूरोप के पूँजीपतियों ने भले ही खून के दलदल में डुबो दिया, लेकिन दुनिया भर के मेहनतकशों के सामने यह सच्चाई आ ही गयी कि पूँजीवाद को उखाड़कर मेहनतकशों की सत्ता कायम करना सम्भव है।

महान अक्टूबर क्रान्ति ने कम्यून की हार से मिली सीखों को अमली जामा पहनाते हुए यह साबित कर दिखाया कि दुनिया की तमाम सम्पदा का उत्पादन मेहनतकश जनसमुदाय सर्वहारा वर्ग की अगुआई में और उसके हिरावल दस्ते–एक सच्ची, इंकलाबी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में खुद शासन की बागडोर सम्भाल सकता है और अपनी तकदीर खुद अपने हाथों से लिख सकता है।

अक्टूबर क्रान्ति ने यह साबित किया कि मालिक वर्गों को समझा-बुझाकर नहीं बल्कि सत्ता को बलपूर्वक उखाड़कर और उन पर बलपूर्वक अपनी सत्ता कायम करके ही पूँजीवाद के जड़मूल

(पेज 8 पर जारी)

आपस की बात

उद्योग तो लग रहे हैं, लेकिन नौकरी की गारण्टी?

'बिगुल' अखबार का कुछ महीनों से मैं नियमित पाठक हूँ। मजदूरों की जिन्दगी को लेकर जो छपता है उसे ध्यान से पढ़ता हूँ। अभी पिछले अंक में 'डाबर के आईने में सिडकुल का भविष्य' पढ़ कर काफी अच्छा लगा।

वैसे तो मैं भी मजदूरी करता हूँ। आजकल सिडकुल का चक्कर लगा रहा हूँ। लेकिन कोई जुगाड़ बन नहीं पा रहा है। कोई पक्की नौकरी नहीं, फिर भी बिना किसी परिचित के ठेकेदार तक पहुँच पाना कठिन है। वहाँ भी 4000 या 5000 रुपये जैसा जिससे बन पाये चढ़ावा देना पड़ता है। महीने के तीस दिन काम मिल पाना तो असम्भव है, कभी-कभी गेट तक पहुँचने पर पता चलता है कि अगली शिफ्ट में आओ और अगली शिफ्ट में जाने पर पता चलता है, काम नहीं है। इतने पर भी कब ब्रेक लगाकर घर बिठा दिया जाये भरोसा नहीं। इस समय मैं भी ब्रेक का शिकार होकर फिर से काम खोज रहा हूँ।

इस समय उत्तरांचल सरकार सैकड़ों की संख्या में उद्योगपतियों को आमन्त्रित कर रही है। यहाँ के कारखाने तो औने-पौने दाम खरीदी गयी जमीनों पर बसाये गये हैं। सुनने में तो यहाँ तक आता है कि कई कम्पनियाँ अलग-अलग प्रदेशों से अपना काम ठप करके उत्तरांचल की जमीन पर मेहरबान हो रही हैं। हो भी क्यों न जब यहाँ की सरकार उन्हें भारी छूट मुहैय्या करा रही है। उद्यमियों को दस साल तक एक्साइज ड्यूटी में छूट, पाँच साल तक इन्कम टैक्स से 100 फीसदी छूट और बाद के पाँच साल में 20 फीसदी की छूट मिलेगी। बिजली की दर उद्यमियों को बेहद सस्ती है–1.90 रुपये प्रति युनिट मात्र। यही नहीं मल्टीप्लेक्स प्रोजेक्ट में मनोरंजन कर सौ फीसदी मुफ्त। कैपिटल इन्वेस्टमेंट सब्सिडी, ट्रांसपोर्ट सब्सिडी और स्टैम्प ड्यूटी पर छूट अलग है। सरकार ने इन पर नौकरी देने की कोई बाध्यता भी नहीं लगाई है। ऊपर से प्रदेश के मुख्यमंत्री यहाँ आये दिन डेरा जमाये बैठे रहते हैं कि कहीं उद्योगपतियों की सेवा में कोई कमी न रह जाये। जहाँ इतनी बम्पर छूटें और सुविधाएँ मुहैय्या हो रही हैं वहाँ उद्यमियों की भीड़ क्यों नहीं लगेगी।

मैं आपके अखबार के माध्यम से पूछना चाहता हूँ कि जब हमें दर-दर भटकते रहना है तो इतने उद्योगों के लगने न लगने का फायदा कैसा? आखिर इन दौलत के मद में अंधे उद्यमियों से क्या आस लगाई जा सकती है?

–संजय कुमार
रुद्रपुर, ऊधम सिंह नगर

दलाल ट्रेड यूनियनें नहीं क्रान्तिकारी संगठन चाहिए

मैं बिगुल के पाठकों से अपना दुख साझा करना चाहता हूँ। मैं से. 5 स्थित बी-69 में नोएडा मारुति रबर उद्योग प्रा.लि. में एक मजदूर था। यह कम्पनी प्लास्टिक के पाइप आदि का उत्पादन बड़े पैमाने पर करती है। इस कम्पनी में 12-12, 14-14 घण्टे जांगर खटाने के बाद मात्र 1500-1600 रुपये ही मिलता है जिसमें ओवरटाइम के नाम पर कुछ नहीं। हेल्पर की जब चाहे नाइट में ड्यूटी लगा देते हैं। इसका विरोध करने पर नौकरी से निकाल देने की धमकियाँ मिलती हैं।

एक दिन जब रोज की तरह मैं काम पर गया तो सुपरवाइजर ने घड़ी देखते हुए कहा कि तुम आज 10 मिनट लेट आए हो इसलिए काम पर नहीं रखे जाओगे। तुम्हें नाइट ड्यूटी में आना पड़ेगा। रात 8 बजे जब मैं ड्यूटी पर गया तो सुपरवाइजर ने मुझे हेल्पर होने के बावजूद मशीन पर लगा दिया। मैंने विरोध किया कि रोलर मशीन से मुझे डर लग रहा है और मैंने कभी मशीन नहीं चलाई है। आखिरकार धमकाने के बाद मैंने रोलर मशीन पर काम करना शुरू कर दिया। काम करने के कुछ समय बाद ही मेरा बायाँ हाथ मशीन में जा फँसा और पूरे जड़ से ही मेरी पाँचों उंगलियाँ कट गयी और मैं बेहोश हो गया। कम्पनी के कर्मचारियों ने मुझे अस्पताल में भर्ती कराया। तीन दिन बाद कम्पनी से फोटोग्राफर गया और मेरा फोटो खींचकर और मालिक ने मेरा फर्जी हस्ताक्षर करके बैक डेट में ई.एस.आई. का कार्ड बनवाया जिससे कि मुआवजा देने से बच जाए। इसके बाद वहाँ से से. 12 स्थित ई.एस.आई. अस्पताल में भर्ती कराया गया।

जब मैंने मालिक पवन जैन से मुआवजे एवं फिर से काम पर रखने की माँग की तो वो डाँट-डपट के लहजे में कहा कि जब तुम्हारा हाथ ही नहीं है तो तुम क्या कर पाओगे। जा भाग यहाँ से! अगर मुआवजे की माँग की तो समझ लेना क्या होगा!

बाद में मैंने एक वकील से सम्पर्क किया तो वह कुछ पैसे लेकर केस करने के लिए तैयार हो गया लेकिन जब वकील का मालिक से आमना-सामना हुआ तो उसकी जेब गर्म कर दी और वो चुप्पी लगा गया।

तब मैंने युनियनों की शरण लेनी चाही। इसी प्रक्रिया में सी.आई.टी.यू. (सीटू) के उदयकांत झा से मुलाकात करके सारी कहानी सुनाई वहाँ उपस्थित उदयकांत झा, ज्ञान सिंह और नागीन्द्र शुक्ला ने तत्काल 1500 रुपया अपनी फीस जमा कराया और कहा कि केस फाईनल हो जाने पर हम अपना 25 प्रतिशत कमीशन भी लेंगे। इसके बाद यूनियन की तरफ से डी.एल.सी. में मुकदमा डलवाया। इसी बीच उदयकांत झा मालिक से दलाली खाकर मेरा फर्जी हस्ताक्षर बनवाकर एक कागज तैयार करवाया। जिसमें लिखा था कि मैंने 2300 रुपये मुआवजे के रूप में कम्पनी मालिक पवन जैन से प्राप्त किया। तारीखों पर जब मैंने उदयकांत से बात की तो उसने मुझे धमकाना शुरू कर दिया। उसने कहा कि जाओ घर बैठो अगर मुकदमे के फेर में पड़े तो जान से भी हाथ धो बैठोगे, मालिक ने गुण्डे लगवा रखे हैं। इसके बाद मैं घर लौट आया और सोचने लगा कि सारे कानून, सारे के सारे ट्रेड यूनियन खासकर सीटू जो दुकान खोलकर बैठे हुए हैं सब के सब पूँजीपतियों के दलाल बन चुके हैं। क्योंकि ये लोग मजदूरों से भी खून पसीने की कमाई निचोड़ते हैं और ऊपर से मालिकान से भी। सीटू के उदयकांत झा मुझसे लगभग तीन हजार रुपये से ऊपर खा चुका है।

इतना कुछ झेलने के बाद ही मेरी समझ में आया कि जब तक एक जुझारू क्रान्तिकारी संगठन नहीं होगा तब तक ये कम्पनी के मालिकान और उनके दलाल ट्रेड यूनियन हमें लूटते-खसोटते रहेंगे।

–सुखबीर सिंह,
नोएडा

मजदूर आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए कुछ सुझाव

सभी मजदूर दोस्तों को मेरी तरफ से लाल सलाम। देश में मजदूर आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए मैं कुछ सुझाव दे रहा हूँ।

1. क्रान्ति सिर्फ एक पत्रिका के माध्यम से सफल नहीं हो सकती है।

2. देशव्यापी रूप में जनचेतना की आवश्यकता होती है।

3. क्रान्ति का जागरण करने के लिए गाना का विशेष प्रसारण एवं आडियो कैसेट को महत्त्वपूर्ण स्थान देना चाहिए।

4. जगह-जगह मजदूरों का हौसला बढ़ाने के लिए मजदूर सम्मेलन एवं जागरण आम सभा करना भी जरूरी है।

5. देशव्यापी रूप में किसान जनचेतना एवं कृषक जागरण अभियान चालू करना।

6. हरेक क्षेत्र के विद्यार्थी में क्रान्तिकारी आन्दोलन के बारे में विशेष सुझाव एवं सम्मेलन में सहभागी करना क्योंकि विद्यार्थी आन्दोलन के प्रमुख अंग हैं।

7. सम्पूर्ण मजदूर वर्ग को इसके बारे में ज्ञानवर्धन सलाह देना। और सहज से समझने वाली बात से जानकारी देना।

8. समय-समय पर मजदूर, किसान, विद्यार्थी सबको अपना कार्य योजना एवं सभा सम्मेलन में आने के लिए आग्रह करना।

9. सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं नाचगान के माध्यम से सम्पूर्ण जनता का ध्यान आकर्षण करना।

10. इसके अधिक जानकारी के उत्सुक मानस के लिए नियम कार्य योजना के मौखिक जानकारी एवं लिखित पत्रिका का माध्यम से अवगत कराना।

11. ये सम्पूर्ण कार्य बिना रकम तो नहीं बन सकता है इसके लिए चन्दा स्वरूप सम्पूर्ण व्यवस्थित कार्यक्रम बनाकर चन्दा संकलन अभियान चलाना।

12. सहयोग स्वरूप जमा हुआ पैसे से प्रचार-प्रसार समूह को घुमाते रखना आसान होगा क्योंकि सभी मजदूर वर्ग कुछ कमाने के लिए घर छोड़ कर आया है।

13. आसानी से तो किसी भी क्रान्ति का सफल होना सम्भव नहीं है संघर्ष के लिए मोटी रकम की जरूरत पड़ सकती है। सम्भवत सम्पूर्ण मजदूर विद्यार्थी किसान सबसे अधिक इच्छा रखते हैं और उनसे मिला हुआ रकम एकत्र करना जरूरी है। क्रान्ति सफल न होने पर सशस्त्र क्रान्ति का रूप देकर भी सफल करना आवश्यक है।

14. क्रान्ति के साथ-साथ लाल झण्डा चले क्योंकि अदम्य साहस वाला युवा लाल सलाम की सलामी लेकर चलने वाला संगठन बनाना भी जरूरी है इसके लिए भी रकम की जरूरत होती है।

बी.आर. भण्डारी

"बुर्जुआ अखबार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मजदूरों के अखबार खुद मजदूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

बिगुल

मजदूरों का अपना अखबार है। यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपनों के लिए बिगुल कार्यालय को लिखिए।

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी- अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय	: जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क	: 29, यू.एन.आई. अपार्टमेण्ट, जीएच-2, सेक्टर-11, वसुंधरा-गाजियाबाद-201010
ईमेल	: bigul@rediffmail.com

मूल्य: एक प्रति–रु. 3 - वार्षिक–रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :
1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ ज़रूरी पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा –लेनिन 5/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
अनश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
समाजवाद की समस्याएं, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
क्यों माओवाद? 10/-
बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-
मई दिवस का इतिहास 5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ।

मऊ दंगा : धर्म ध्वजाधारियों का खूनी कारनामा

विशेष संवाददाता

गोरखपुर। मऊ की घटनाएँ धर्म का बाना ओढ़े उन ताकतों की लगातार जारी सरगर्मियों का नतीजा हैं जो मेहनतकश अवाम की एकता को खोखला कर पूँजी की सत्ता की हिमायत और हिफाजत में जुटी हुई हैं।

गुजरात के बाद मऊ की घटनाओं ने एक बार फिर साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों की चुनौती का शिद्दत के साथ अहसास कराया है।

मऊ में हत्या, आगजनी और लूटपाट की जैसी घटनाएँ सामने आयी हैं उसे देखते हुए इसे प्रचलित अर्थों में दंगा कहना उचित नहीं है। ऐसा नहीं हुआ कि हिन्दू-मुस्लिम दोनों समुदायों की आम आबादी धार्मिक जुनून में अन्धी होकर बहशियाना हरकतों को अंजाम देने लगी। सब कुछ सुनियोजित, संगठित। और दोनों समुदायों के असामाजिक तत्त्वों के गिरोहों ने हिंसा, आगजनी और लूटपाट की घटनाओं को अंजाम दिया। उन्हें उकसाने, संगठित करने और दिशानिर्देश देने का काम हिन्दू हितों के ठेकेदारों और मुसलमानों के स्वयम्भू मसीहाओं ने किया। गुजरात में जितने बड़े पैमाने पर राज्य द्वारा एकतरफा संगठित कत्लेआम हुआ और मुसलमानों की सम्पत्ति को तहस-नहस किया गया उसकी तुलना मऊ की घटनाओं से नहीं की जा सकती, लेकिन स्वतःस्फूर्त साम्प्रदायिक हिंसा की कार्रवाइयों के बजाय योजनाबद्धता और संगठित कार्रवाइयां मऊ में भी हुई। वहाँ जान-माल का नुकसान दोनों समुदायों को हुआ। कुल आठ लोग मारे गये, 250 से अधिक दुकानों में आगजनी व लूटपाट की घटनाएँ हुई जिसमें करोड़ों की सम्पत्ति स्वाहा हो गयी।

मऊ के कई स्थानीय नागरिकों से इस संवाददाता की बातचीत से यह तथ्य सामने आया कि 13 अक्टूबर को कुछ शरारती तत्त्वों द्वारा भरत मिलाप स्थल पर बिजली की सजावट में तोड़फोड़ के बाद तनावपूर्ण स्थितियाँ पैदा हुई थीं लेकिन दंगा भड़कने की शुरुआत अगले दिन की कार्रवाई से हुई। 14 अक्टूबर को संघ परिवार से जुड़े लोगों द्वारा संस्कृत पाठशाला तिराहे पर चक्का जाम और उसी दिन सुबह हिन्दू युवा वाहिनी के जिलाध्यक्ष अजीत सिंह चन्देल द्वारा अपने घर से गोली चलाने की घटना के बाद दंगा भड़का। इस घटना में पाँच लोग घायल हुए थे जिसके बाद हिंसा, आगजनी और लूटपाट की घटनाओं का सिलसिला शुरू हुआ।

शुरुआती 72 घण्टों में प्रशासन की भूमिका भी संदिग्ध रही। दंगाइयों को प्रशासन ने पूरी तरह खुला छोड़ दिया था। पी ए सी तो खुलेआम एक समुदाय के लोगों की मदद करने और बुनकर कालोनी में तो सीधे-सीधे निर्दोषों के घरों के घुसकर असलहों की तलाशी के नाम पर लूटमार करने में मशगूल रही। पहले से चिह्नित ठिकानों पर पी ए सी की मदद से हमले किये गये। हिन्दू युवा वाहिनी और भाजपा के नेता लगातार भड़काऊ बयान देकर माहौल बिगाड़ने में लगे रहे। मऊ के स्थानीय नागरिकों ने बताया कि सपा और बसपा के कई नेताओं की भूमिका भी सन्दिग्ध रही है।

बहरहाल स्थानीय स्तर पर जिन भी शरारती तत्त्वों, या उकसावेबाजों की भूमिका रही है उनकी पहचान करने और उन्हें सजा दिलाने की कवायदों से अधिक अहम बात है उस चुनौती का मुकाबला करने की दूरगामी रणनीति की जो आज देशव्यापी स्तर पर सभी प्रगतिशील, धर्मनिरपेक्ष और क्रान्तिकारी ताकतों के सामने उपस्थित है। मऊ दंगे ने इसका नये सिरे से अहसास कराया है। यह एक चुभने वाली सच्चाई है कि साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतें सत्ता में रहे या न रहें देश के सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने में उनकी गहराई तक जो मौजूदगी है वह आने वाले दिनों में गुजरात और मऊ के नये-नये संस्करणों को तैयार करती रहेगी। जब तक यह मौजूदगी बनी रहेगी तब तक दंगों में होने वाली खून की बारिश में मतदान की अच्छी फसल काटने वालों का मंसूबा पूरा होता रहेगा और मेहनतकश अवाम के बीच साम्प्रदायिक बँटवारे की खाई चौड़ी होती रहेगी।

मेहनतकशों की क्रान्तिकारी राजनीति को मज़बूत बनाकर ही साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों के मंसूबों को ध्वस्त किया जा सकता है

देश के समाज से साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों को जड़मूल से नष्ट करने के लिए हमें उस जमीन को पहचानना होगा जिस पर ये ताकतें फल-फूल रही हैं। यह जमीन है देश की मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था। साम्प्रदायिक फासीवाद की विचारधारा और उसकी राजनीति, उस पर आधारित समूची सामाजिक-सांस्कृतिक किलेबन्दी, दरअसल इसी पूँजीवादी व्यवस्था की सुरक्षा में है। देश के भीतर साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों का जो उभार 1980 के दशक की शुरुआत से सामने आता है वह इसी सच्चाई को जाहिर करता है। 1980 के दशक की शुरुआत ही वह समय है जब देश की पूँजीवादी व्यवस्था गहरे संकटों के नये दौर में प्रवेश करती है। जब महँगाई-बेकारी की बुनियादी समस्याएँ विकराल रूप में सामने आती हैं और देश की तमाम पूँजीवादी राजनीतिक पार्टियों से आम जनता का पूरी तरह मोहभंग हो चुका होता है और नये विकल्पों की तलाश की बेचैनी समाज में बढ़नी शुरू होती है। अयोध्या में मन्दिर-मस्जिद विवाद का नये सिरे से उठ खड़ा होना और बाबरी मस्जिद ध्वंस के बाद पूरे देश को साम्प्रदायिक दंगों की आग में झोंक देने की कोशिशों को इसी पृष्ठभूमि में समझा जाना चाहिए। 1990 के दशक में नयी आर्थिक नीतियों के साथ ही देश में व्यवस्था द्वारा जनता के ऊपर शुरू किये गये नये हमलों ने साम्प्रदायिक फासीवादी राजनीति के लिए नये सिरे से खाद-पानी मुहैया कराया है।

साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों के उभार के पीछे एक अहम कारण मेहनतकश जनता के आन्दोलनों का कमजोर होना भी है। मऊ के दंगों के मामले में यह बात खासतौर पर अहम है। मऊ एक समय मेहनतकश जनता की क्रान्तिकारी राजनीति का एक अहम केन्द्र था। लेकिन मेहनतकशों की अगुआई करने वाली राजनीतिक पार्टियों द्वारा संसदीय चुनावी रास्ता अख्तियार कर लेने के बाद मेहनतकशों की एकता कमजोर हुई और साम्प्रदायिक बँटवारे के आधार पर अपनी चुनावी राजनीति की इमारत खड़ी करने वाली ताकतों को फलने-फूलने का अवसर मिला।

इसलिए, आज सबसे अहम सवाल है मेहनतकश जनता की वर्गीय एकता को मजबूत बनाने वाली क्रान्तिकारी राजनीति की सरगर्मियों तेज करने का और उसे पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ संगठित करने का। जिससे उस कचरे के ढेर की पूरी तरह सफाई हो सके जिस पर साम्प्रदायिक फासीवाद का शैतान खड़ा होकर नंगा नाच कर रहा है।

यही इतिहास का भी सबक है। साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों का मुकाबला मेहनतकशों की क्रान्तिकारी राजनीति पर कायम फौलादी संगठित शक्ति के बूते ही किया जा सकता है। पूँजीवादी संसदीय व्यवस्था के दायरे में किसी किस्म के चुनावी गँठजोड़ कायम कर साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों को चुनौती नहीं दी जा सकती। इसलिए, तमाम प्रगतिशील, धर्मनिरपेक्ष ताकतों को अपने सभी विभ्रमों से बाहर निकलकर क्रान्तिकारी राजनीति का परचम उठाने वाली ताकतों को मजबूत बनाने के लिए हरमुमकिन मदद करनी चाहिए।

उत्तरांचल के मंत्रियों ने किया अपना पॉकेटमनी दूना

(बिगुल संवाददाता)

उत्तरांचल की कांग्रेसी सरकार जनता की गाढ़ी कमाई को दोनों हाथों से खुद अपने और अपने चहेतों पर लुटा रही है। सरकार ने पहले अपने चहेतों को राज्यमंत्री का दर्जा देकर ढेरों लाल बत्ती की गाड़ियाँ थमा दी। फिर मंत्रियों को लैपटॉप (छोटा कम्प्यूटर) दे डाला। अब उसने अपने मंत्रियों की पॉकेटमनी 15,000 रुपये मासिक से बढ़ा कर 30,000 रुपये मासिक कर दी है। सरकार के बाकी कारनामों पर विपक्ष ने चाहे जितना शोर मचाया हो, इस वेतनवृद्धि पर सभी एक मत थे।

विगत 21 अक्टूबर को राज्य की संसदीय कार्य मंत्री डॉ. इन्दिरा हृदयेश द्वारा प्रस्तुत उत्तरांचल (उत्तरप्रदेश) मंत्री (वेतन, भत्ता और प्रकीर्ण उपबन्ध) अधिनियम, 1981 (संशोधन) विधेयक 2005 ध्वनिमत से पारित हो गया। इस संशोधित विधेयक के अनुसार सूबे के मंत्रियों के लिए पूर्व निर्धारित पॉकेटमनी 500 रुपये प्रतिदिन अथवा 15,000 रुपये से बढ़कर 30,000 रुपये प्रतिमाह हो गया। यह राशि मंत्रियों को मिलने वाले मूल वेतन व अन्य भत्तों-सुविधाओं के अतिरिक्त है।

वैसे राज्य सरकार जनप्रतिनिधियों और नौकरशाहों के लिए एक और विधेयक प्रस्तुत करने वाली है–'उत्तरांचल (विधान सभा सदस्यों, मंत्रियों तथा अधिकारियों की उपलब्धियाँ एवं पेंशन) (प्रथम संशोधन) विधेयक, 2005।' इसके तहत उत्तरांचल के विधायकों, मंत्रियों, नौकरशाहों को उत्तरप्रदेश के समान वेतन देने का प्रस्ताव है। इस अन्तर पर जरा गौर करें और देखें कि उत्तराखण्ड जनता की पीठ पर कितना बोझ लदने वाला है–निर्वाचन क्षेत्र भत्ता 15,000 रुपये (उ.प्र.) 7,500 रुपये (उत्तरांचल); रेलवे कूपन 1.50 लाख रुपये (उ.प्र.) 1.20 लाख रुपये (उत्तरांचल); दैनिक भत्ता 500 रुपये (उ.प्र.) 300 रुपये (उत्तरांचल); सचिवालय भत्ता 6,000 रुपये (उ.प्र) 2,500 रुपये (उत्तरांचल); चिकित्सा भत्ता 6,000 रुपये (उ.प्र.) 2,000 (उत्तरांचल)।

एक तरफ तो उत्तराखण्ड की भारी आबादी गरीबी और जिल्लत की जिन्दगी जी रही है। पहाड़ के दूर दराज के ढेरों ऐसे इलाके हैं जहाँ न तो सड़कें हैं न आवागमन के साधन, न तो बिजली है और न ही पीने के पानी और चिकित्सा के कोई साधन। दूसरी तरफ मंत्रियों-विधायकों की सुख-सुविधा में लगातार बढ़ोत्तरी जारी है।

दरअसल उत्तराखण्ड की जनता ने अपने कुर्बानी भरे लम्बे संघर्ष के दौरान जिस राज्य की चाहत की थी वह तो मिला नहीं, उल्टे मंत्रियों-नौकरशाहों की एक नयी जमात जरूर मिल गयी जो यहाँ की मेहनतकश जनता की पीठ पर सवारी करने लगी। राज्य गठन के बाद 22 विधायकों की संख्या 70 में बदल गयी। दर्जनों मंत्री और उससे अधिक राज्य मंत्री का दर्जा पायी नयी जमात भी शामिल हो गयी। अस्थायी राजधानी के विकास के नाम पर करोड़ों रुपये पानी की तरह बह गये। इसके रख-रखाव के लिए करोड़ों रुपये और खर्च होते जा रहे हैं। यह पूरा खर्च जनता पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से लगने वाले टैक्स से वसूला जा रहा है।

और यह पूरा खर्चा जिस अमले के ऊपर हो रहा है, वह अमला जनता के कल्याण के लिए नहीं, राज्य के नये पुराने पूँजीपतियों, ठेकेदारों, भूमि व शराब माफियाओं तथा धन्ना सेठों के हित पोषण में ही लगा हुआ है। उन्हीं की मैनेजिंग कमेटी के रूप में काम कर रहा है।

असल में, पूँजीवादी व्यवस्था में सरकारों का यही काम होता है–सेवा पूँजीवादी लुटेरों की करो और इसकी कीमत टैक्स के रूप में आम जनता से वसूलो।

"लचीले" श्रम कानून की वकालत करने वाले जज भी लुटेरी जमात का हिस्सा हैं!

(कार्यालय प्रतिनिधि)

पिछले दिनों मुम्बई में श्रम कानूनों के लचीलेपन पर एक संगोष्ठी आयोजित हुई, इस संगोष्ठी में देश के कानून और उद्योग जगत के विशेषज्ञों ने जिनमें न्यायाधीशों की भी भरमार थी ने उद्योगों के अस्तित्व के लिए ठेका प्रणाली को कानूनी जामा पहनाने की और सहायक श्रम आयुक्तों की भूमिका समाप्त करने की जम कर वकालत की।

संगोष्ठी में पूँजीपतियों और न्यायाधीशों के बीच अच्छा सामंजस्य दिखलायी दिया और दोनों एक ही सुर में बोलते हुए दिखे।

एक सत्र की अध्यक्षता करते हुए बम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति एफ.आई. रेबेलो ने सरकारी श्रम अधिकारियों को बदलते आर्थिक परिदृश्य के अनुरूप हालात का सामना करने के लिए उचित प्रशिक्षण न होने की दुहाई देते हुए कहा कि औद्योगिक विवाद अधिनियम में संशोधन करना होगा ताकि सहायक श्रम आयुक्तों से अध्यक्षता की भूमिका वापस ली जा सके।

लेबर कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश गोविन्द राम तलरेजा ने फर्माया कि 240 दिन तक काम पर नियोजन के स्थायित्व के प्रावधान को आदर्श स्थायी आदेश से निकाल देना चाहिये। (मतलब यह कि नियमितीकरण के झंझट से मुक्ति) इन्होंने यह भी फर्माया कि औद्योगिक विवाद अधिनियम के खण्ड 5 बी को ही कानून से हटा देना चाहिए। (अर्थात छँटनी और कारखाना बन्दी के लिए पूर्व अनुमति के झंझट से मुक्ति) उन्होंने यहाँ तक कहा कि सरकार ने 1991 में जिस छँटनी नीति की घोषणा की थी उसे अभी तक कार्यान्वित नहीं किया गया।

न्यायाधीशगण वही भाषा बोल रहे थे, जिसकी माँग उदारीकरण के नाम पर देश और दुनिया के पूँजीवादी लुटेरे करते रहे हैं और सरकारें जिस पर अमल कर रही हैं।

श्रम कानूनों को पूरी तरह से मालिकों के पक्ष में करने यानी 'हायर एण्ड फायर' (जब चाहे रखो जब चाहे निकालो) का कानून बनाने के लिए वैश्विक लुटेरे और उनकी संस्थाएँ – विश्व बैंक-अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष-विश्व व्यापार संगठन तथा देशी पूँजीवादी लुटेरे और उनकी संस्थाएँ– फिक्की-एस्सोचैम- सीआईआई चीख-पुकार मचाती ही रही हैं। सरकारें (चाहे किसी भी पार्टी या गठबंधन की रही हों) इसके लिए माहौल बनाने, कानून बनाने, श्रम आयोग गठित करके इसी के अनुरूप रिपोर्ट पेश करने की कवायद में जुटी रही हैं और न्यायपालिकाएँ सीधे फरमान जारी करके पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति अपनी पक्षधरता प्रकट करती रही हैं।

ऐसे में न्यायाधीशों का यह बयान कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इससे यही प्रमाणित होता है कि पूँजीवादी व्यवस्था के सभी पैरोकार खुलकर और मुखर रूप से अपनी पक्षधरता निभा रहे हैं। न्यायाधीश भी तो उसी जमात का हिस्सा हैं।

जनता को सूचना का अधिकार देने का कानून
शासन-प्रशासन से उठता भरोसा बहाल करने की कवायद

बिगुल संवाददाता

दिल्ली। जनता को सूचना का अधिकार देने और प्रशासन को पारदर्शी बनाने के नाम पर पिछले 12 अक्टूबर से देश भर में एक केन्द्रीय कानून लागू करने की घोषणा की गयी है। मीडिया प्रेमी बुद्धिजीवी और सूचना के अधिकार के लिए सक्रिय अनेक एन जी ओ इस कानून को लागू करने के लिए केन्द्र सरकार को बधाइयाँ दे रहे हैं। खबरिया चैनलों पर प्रायोजित परिचर्चाओं के जरिये ऐसा समाँ बाँधने की कोशिश हुई जैसे देश की जनता को अब भ्रष्टाचार से निजात मिल जायेगी। लेकिन क्या सचमुच इस कानून से बेलगाम नौकरशाही और सत्ता-तंत्र पर किसी प्रकार का अंकुश लग सकेगा?

सबसे पहली बात तो यह कि हमें भूलना नहीं चाहिए कि हमारे देश की नौकरशाही ब्रिटिश नौकरशाही के रंग-ढंग में इस तरह रंगी हुई है कि जनता के प्रति संवेदनहीनता, निरंकुश अधिकार भावना संस्कार के रूप में उसके रग-रग में बसी हुई है। कानून घोषित होने के साथ ही देश के सभी राज्यों की नौकरशाही पूरे जोर-शोर के साथ इस कानून के अध्ययन में डूब गई है। यह पता लगाने के वास्ते कि कानून में कौन-कौन से सूराख हैं जिसकी आड़ में सूचना के अधिकार को ठेंगा दिखाते हुए अपनी लूट-खसोट के विशेषाधिकारों की हिफाजत कर सकें। कानून बनाने वालों ने ऐसे कई सूराख पहले ही इसमें छोड़ रखे हैं। और हर कानून से बच निकलने की कला में माहिर नौकरशाही की पैनी नजर नये-नये सूराख ढूँढ़ ही लेगी।

इस सूचना के अधिकार के दायरे से खुफिया ब्यूरो, रिसर्च एण्ड एनलिसिस विंग (रॉ), डायरेक्टरेट ऑफ रेवेन्यू इण्टेलिजेंस, अर्धसैनिक बलों और देश की सुरक्षा से जुड़ी एजेंसियों को बाहर रखा गया है। इन विभागों के कामों को जनता की चौकसी से बाहर रखा जाना चाहिये या नहीं इस पर बहस हो सकती है लेकिन कानून की एक उपधारा ऐसी है जो नौकरशाहों को बच निकलने का साफ मौका मुहैया कराती है। इस उपधारा में कहा गया है कि अगर कोई व्यक्ति किसी विभाग से ऐसी सूचना माँगता है जिसका सम्बन्ध किसी तीसरे पक्ष से हो तो यह पूरी तरह जनसूचना अधिकारी के विवेक पर निर्भर है कि वह तीसरे पक्ष की अनदेखी करे या उसके हितों को ध्यान में रखे। कानून की यह अकेली उपधारा ऐसी है जिसके सहारे घाघ नौकरशाह सूचना के अधिकार को अपनी मुट्ठी में दबाये रखेंगे। कानून की ओर बारीकी से छानबीन करने पर ऐसे अनेक सूराख नौकरशाह ढूँढ़ निकालेंगे।

बहरहाल, मान लिया जाये कि इस कानून से जनता को मनचाही सूचना हासिल करने का अधिकार मिल जायेगा। लेकिन क्या इस सच्चाई से हम वाकिफ नहीं कि पहले से कागजों पर हासिल कानूनी अधिकारों का कितना प्रयोग देश की आम जनता कर पाती है। जनता को मिले तमाम कानूनी अधिकारों को रोज-रोज थाने के सिपाही और दरोगा जी अपने बूटों तले रौंदते रहते हैं। तमाम पढ़े-लिखे लोग भी थाने जाने के पहले हजार बार सोचते हैं। केवल मुट्ठीभर हैसियतदार आबादी ही कानूनी अधिकारों का प्रयोग कर पाती है। संविधानप्रदत्त जनवादी अधिकारों के बारे में तो स्थिति और भी बदतर है। केवल जनता के बीच सक्रिय सामाजिक एवं राजनीतिक संगठन ही संवैधानिक अधिकारों का उपयोग करते हैं। अधिकांश आम नागरिकों को तो उन्हें मिले हुए संवैधानिक अधिकारों के बारे में जानकारी ही नहीं होती।

समाज के इन जमीनी हालात को देखते हुए सूचना के अधिकार का कानून एक शगूफे से अधिक नहीं साबित होने वाला है। इस कानून का उपयोग समाज की मुट्ठीभर जागरूक पढ़ी-लिखी आबादी, एन जी ओ और कुछ अन्य सामाजिक संगठन ही कर पायेंगे। इससे भ्रष्ट नौकरशाही और समूचे निरंकुश सत्ता तंत्र की सेहत पर कोई असर नहीं पड़ेगा। किसी विभाग से सूचना प्राप्त करने के जो आवदेन किये जायेंगे वे फाइलों में दम तोड़ने रहेंगे या आधी-अधूरी तोड़ी-मरोड़ी सूचनाएँ मुहैया कराकर अफसरान अपना पल्ला झाड़ लेंगे। लोगों को माँगी गयी सूचनाएँ न उपलब्ध कराने वाले अफसरों के खिलाफ सजा आदि के जो प्रावधान किये गये हैं उसकी प्रक्रिया इतनी लम्बी व जटिल होगी कि सूचना माँगने वाला व्यक्ति थककर बैठ जायेगा।

कुल मिलाकर, पूँजीवादी व्यवस्था में जनता को सूचना प्राप्त करने का अधिकार व्यवस्था के फोड़े-फुंसियों से भरे चेहरे को मेकअप कर सुन्दर बनाने के प्रयास के सिवा कुछ नहीं है। आज भ्रष्टाचार (यानी गैरकानूनी लूट) समूचे शासन-प्रशासन तंत्र में महामारी की तरह फैल चुका है और इसके विषाणु समूची व्यवस्था की कोशिकाओं तक को अपनी चपेट में ले चुके हैं। आम जनता के लिए यह बहुत बड़ा मुद्दा बन चुका है। व्यवस्था के दूरगामी हितों के बारे में सोचने वाले चिन्तक-चौकीदार जनता के बीच गिरती साख बहाल करने के उपाय ढूँढ़ते रहते हैं। जनता को सूचना का अधिकार देने का शगूफा छोड़ने के पीछे भी यही मंशा काम कर रही है। तमाम एन जी ओ भी, जो सूचना के अधिकार के सवाल पर लम्बे समय से चिल्लपों मचाये हुए थे, पूँजीवादी व्यवस्था के दाग-धब्बों को धोने की कोशिश में ही लगे हुए हैं। आम तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर किस्म-किस्म के सुधारों की बातें करने वाले तमाम व्यक्तियों और संगठनों की भूमिका यही होती है।

भ्रष्टाचार या गैरकानूनी लूट के सवाल को प्रमुख मुद्दा बनाकर उठाने वाले व्यक्ति या संगठन जाने-अनजाने उस बुनियादी पूँजीवादी लूट के सवाल को आँखों से ओझल कर देते हैं जो कानूनी है, संविधान सम्मत है। यानी, उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने पर आधारित श्रम की कानूनी लूट—जिसके आधार पर सामाजिक सम्पदा मुट्ठी भर हाथों में सिमटती जाती है, जिसके कारण गरीबी के महासागर में ऐश्वर्य और विलासिता के टापुओं का निर्माण होता है। दरअसल, व्यवस्था की यह कानूनी लूट ही तमाम किस्म के भ्रष्टाचार या गैरकानूनी लूट की जननी है। जब तक उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने की व्यवस्था और उस पर आधारित तमाम कानूनी पूँजीवादी विशेषाधिकार कायम रहेंगे, भ्रष्टाचार को खत्म करने की बात करना एक पूँजीवादी पाखण्ड के सिवा कुछ नहीं है। इसलिए, मेहनतकश अवाम को सूचना के अधिकार की शगूफेबाजी के झाँसे में पड़े बिना पूँजीवादी लूट तंत्र के खिलाफ अपने संघर्ष को मजबूत बनाने की कोशिशें तेज कर देनी चाहिए। अलबत्ता, इस दूरगामी बुनियादी संघर्ष में सूचना के अधिकार का कुशलतापूर्वक इस्तेमाल किया जा सकता है।

संसदीय सुअरबाड़े से नहीं सर्वहारा वर्ग की तानाशाही से ही मजदूर वर्ग का राज्य स्थापित होगा

सीपीआई-सीपीएम जैसे संसदीय वामपंथियों द्वारा साम्राज्यवादी-पूँजीवादी जिस खूनी चेहरे को "मानवीय" बनाने की कवायद चल रही है और संसदीय रास्ते से बदलाव की जो धोखे की टट्टी वे खड़ा कर रहे हैं वह मजदूर वर्ग के साथ सीधी गद्दारी है। यही कारण है कि दुनिया भर के पूँजीवादी लुटेरे उनके मुरीद बन रहे हैं और उन्हें पूँजीवादी व्यवस्था की सुरक्षापंक्ति के रूप में देखते आ रहे हैं।

इन धोखेबाजों और गद्दारों से मार्क्सवाद के शिक्षकों ने सर्वहारा वर्ग को बार-बार आगाह किया है। सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक **जोसफ स्टालिन** ने अपनी पुस्तक **'लेनिनवाद के मूलभूत सिद्धान्त'** में लिखा है -

"संक्षेप में *सर्वहारा अधिनायकत्व पूँजीपति वर्ग के ऊपर सर्वहारा वर्ग का राज्य है। उसका आधार बल है, उसकी शक्ति कानूनी सीमाओं से स्वतंत्र है। वह ऐसा शासन है जिसे शोषित और श्रमजीवी जनसमूह की सहानुभूति और उसका समर्थन प्राप्त है।* (लेनिन, **राज्य और क्रान्ति**)

"इस कथन के दो प्रधान निष्कर्ष निकलते हैं :

"पहला : सर्वहारा अधिनायकत्व "पूर्णरूप से" जनवादी अर्थात धनी और गरीब *सबके लिए* एक समान जनवादी नहीं हो सकता। लेनिन के कथनानुसार वह "ऐसा राज्य है जो एक नये ढंग का (सर्वहारा और साधारण सम्पत्तिविहीन लोगों के लिए तो) जनवादी है और एक नये ढंग की (*पूँजीपतियों के विरुद्ध*) तानाशाही है।" (इटालिक्स मेरे द्वारा-स्तालिन) (लेनिन, राज्य और क्रान्ति, ग्रन्थावली, खण्ड 7, पृ.34) शोषकों और शोषितों के बीच समानता नहीं हो सकती यह एक निर्मम सत्य है और इसी सत्य पर परदा डालने के लिए काउत्सकी और उसके चेले-चपाटे सार्वभौमिक समानता तथा "शुद्ध" और "निर्दोष" जनवाद की बातें बघारते एवं नाना प्रकार के पूँजीवादी पाखण्ड रचते हैं। "शुद्ध" जनवाद का सिद्धान्त मजदूर वर्ग के ऊपरी स्तर के उन बाबुओं का सिद्धान्त है जिन्हें साम्राज्यवादी डाकुओं ने घूस देकर अपनी ओर मिला लिया है। इस सिद्धान्त का प्रयोजन है पूँजीवाद के कोढ़ को ढँकना और साम्राज्यवाद पर नई पॉलिश चढ़ाना जिससे शोषित जनता के विरुद्ध संघर्ष में उसे सहायता मिल सके। पूँजीवादी राज्य में शोषितों के लिए न तो कोई वास्तविक 'स्वाधीनता' है और न हो ही सकती है; क्योंकि "स्वाधीनता" के वास्तविक उपयोग के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक साधनों-छापेखाने, कागज, मकान आदि पर शोषकों का ही एकाधिकार है। पूँजीवादी राज्य में शोषित जनता न तो देश के शासन में वास्तविक रूप से भाग ले पाती है और न ले ही सकती है, क्योंकि पूँजीवादी झण्डे के नीचे स्थापित "अत्यन्त" जनवादी सरकारों की स्थापना भी जनता द्वारा नहीं बल्कि रौथ्सचाइल्ड और स्टीन्स तथा रॉकफेलर और मॉर्गन जैसे धन्नासेठों द्वारा की जाती है। पूँजीवादी झण्डे के नीचे स्थापित जनतंत्र *पूँजीवादी* जनतंत्र है; वह अल्पसंख्यक शोषकों का जनतंत्र है जो बहुसंख्यक शोषितों के विरुद्ध और उनके अधिकारों का गला घोंट करके स्थापित किया गया है। सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व में ही शोषित जनता को वास्तविक स्वाधीनता मिल सकती है। तभी मजदूरों और किसानों का सत्ता में भाग लेना भी सम्भव हो सकता है। सर्वहारा अधिनायकत्व की छत्रछाया में स्थापित जनतंत्र *सर्वहारा* जनतंत्र है, बहुसंख्यक शोषितों का जनतंत्र है जिसकी स्थापना अल्पसंख्यक शोषकों के विरुद्ध और उनके अधिकारों को नियंत्रित करके की गई है।

"दूसरा : सर्वहारा अधिनायकत्व का जन्म पूँजीवादी समाज और पूँजीवादी जनतंत्र के शान्तिमय विकास के गर्भ से नहीं हो सकता। सर्वहारा अधिनायकत्व का उदय पूँजीवादी राज्य व्यवस्था और उसकी पुलिस, फौज और नौकरशाही की सारी पूँजीवादी शृंखला के ध्वंस के परिणाम के रूप में ही हो सकता है।"

दुनिया के सबसे बड़े हत्यारे जॉर्ज बुश का ऐलान – "मेरे अभियान ईश्वर के आदेशानुसार संचालित हैं!"

खबरदार! खबरदार!! वा मुलाहिजा होशियार!! सुन लो, खुदा ने दुनिया पर बादशाहत के लिए अमेरिका के राष्ट्रपति को मुकर्रर कर दिया है! ईश्वर का पैगाम है कि बादशाहों के बादशाह शहंशाह महामहिम जॉर्ज बुश को कुछ भी करने की छूट है! वे जो कुछ भी कर रहे हैं गॉड के ऑर्डर से कर रहे हैं। दुनिया के शैतानों को सबक सिखाने के लिए ही उन्होंने अवतार लिया है।

आधुनिक युग के बादशाह सलामत जॉर्ज बुश ने फिलिस्तीनी नेता महमूद अब्बास और तत्कालीन विदेश मंत्री नबील शाथ के साथ जून 2003 में हुई मुलाकात में कहा था कि 'मेरे अभियान ईश्वर के आदेशानुसार संचालित हैं।'

ब्रिटेन में इस माह के अन्त में प्रसारित होने वाले वृत्तचित्र में (यदि अमेरिकी सरकार से इजाजत मिली!) फिलिस्तीनी नेता ने बताया है कि बुश ने उनसे कहा कि "ईश्वर ने हमसे कहा—जॉर्ज, अफगानिस्तान में आतंकवादियों से लड़ो और मैंने किया। इसके बाद ईश्वर ने मुझसे कहा—'जॉर्ज, इराक में अत्याचार का अन्त करो और मैंने किया।' —एक बार फिर मुझे लगता है कि ईश्वर मुझसे कह रहा है कि फिलिस्तीनियों को उनका राज्य, इजराइलियों को सुरक्षा दिलाओ और पश्चिम एशिया में शान्ति स्थापित करो।... मुझ पर नैतिक और धार्मिक जवाबदेही है इसलिए मैं आपको फिलिस्तीनी राज्य दिलाऊँगा।"

तो सुन लिया दुनिया वालो! खुदा के इस नये एजेण्ट का ऐलान। इसलिए सब कुछ सह लो और उसे मनमानी करने दो, बहाने दो खून की नदियाँ, लूटने दो दुनिया की दौलत और गरीबों की मेहनत और उनके शरीर के एक-एक कतरा खून को, क्योंकि उसका 'अभियान ईश्वर के आदेशानुसार संचालित है।'

अभी ज्यादा दिन नहीं बीते हैं, कुछ सौ वर्ष पहले की बात है। मध्ययुग के सामन्ती राजा अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि बताते थे और बताते थे कि राजा अच्छा या बुरा नहीं होता। बल्कि उनका अन्याय जनता के पिछले जन्म के बुरे कर्मों का फल देने का परिणाम है। बुश आधुनिक युग का पूँजीवादी बादशाह है। जो दूसरों को इसी जन्म के 'कर्मों' का फल दे रहा है, युद्ध की विभीषिका रच रहा है, दूसरे देशों में तख्तापलट करवा रहा है, डॉलर की प्रभुता (श्रेष्ठता) बनाने के लिए हर किस्म के हथकण्डे अपना रहा है। यह कभी 'इतिहास के अन्त' की घोषणा करवाता है तो कभी धर्मयुद्ध की घोषणा करता है। तब के राजा पुनर्जागरण- प्रबोधन-पूँजीवादी क्रान्तियों से, तर्कशीलता से ध्वस्त हुए और उनका पूरा सामन्ती समाज ध्वस्त हो गया। और यह आधुनिक राजा उसी पूँजीवाद की हिफाजत में, अपनी संप्रभुता और बाजार पर कब्जे के लिए गुजरे जमाने के पुराने हथियार से अपने को लैस कर रहा है। विज्ञान के आधुनिकतम प्रयोगों का अपने लिए इस्तेमाल करते हुए ईश्वर का यह आधुनिक प्रतिनिधि खुद अपने देश अमेरिका में विज्ञान-विरोध, अतार्किकता और अंधविश्वासों को प्रश्रय दे रहा है। यह अमेरिका में एक मुद्दा चलवा रहा है कि डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत के साथ-साथ स्कूलों में यह विचार पढ़ाया जाए कि संसार की रचना नियंता द्वारा एक डिजाइन के अनुसार हुई है।

तो ऐसा है खुदा का यह पूँजीवादी बन्दा। लेकिन आत्माभिमान के नशे में चूर यह बन्दा इतिहास से सबक लेना भी शायद भूल गया है। खुदा के सामन्ती बन्दे तो अपनी व्यवस्था के साथ कब्र में दफन हो गये और दफन किया पूँजीवाद ने। अब इस पूँजीवादी बन्दे का क्या होगा?...

– एम. रंजन

दुनिया भर के पूँजीपति खुश हैं संसदीय वामपंथियों से

पूँजीपति मेहरबान तो गदहा पहलवान

मोगाम्बो खुश हुआ। आखिर क्यों न हो। अगर कथनी में मजदूर हित और करनी में पूँजीपतियों की सेवा हो तो फिर मोगाम्बो खुश क्यों न हो! उदारीकरण के इस दौर में मजदूर वर्ग के बीच भ्रम की चादर फैलाने के कुशल खिलाड़ी जो बन चुके हैं लाल पताकाधारी संसदीय वामपंथी। पूँजीवादी व्यवस्था की सुरक्षापंक्ति को मजबूत करने के काम में मशगूल भला ऐसा शातिर खिलाड़ी कहाँ मिलेगा जो निजीकरण-छँटनी-तालाबन्दी-विनिवेशीकरण के खिलाफ देशव्यापी हड़ताल भी करता हो और इसे लागू करने में सहयोग भी देता हो।

जी हाँ! ऐसे ही तत्त्वों की तारीफ में इस बार अनिवासी उद्योगपति स्वराज पाल उतर पड़े हैं। उनका मानना है कि वामपंथी दलों की ओर से यूपीए सरकार की की जा रही आलोचनाओं को बाहर बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया जा रहा है। वामपंथियों का महज इस बात पर जोर है कि आर्थिक सुधारों का चेहरा "मानवीय" हो।

पिछले दिनों भारत आये छह सदस्यीय ब्रिटिश संसदीय प्रतिनिधि मण्डल की अध्यक्षता कर रहे इस अनिवासी पूँजीपति का कहना था कि मुझे उनके (संसदीय वामपंथियों के) उठाये जा रहे मुद्दों में कुछ भी गलत नहीं लग रहा।...एक लोकतंत्र में आप जनमत को नजरअंदाज नहीं कर सकते। आपको इसका आदर करना होगा।

उचित ही कहा है पाल ने। पूँजीपतियों को उनका आदर करना ही चाहिए। 'वर्ग शत्रुओं' से कैसा समन्वय बैठाया इन्होंने कि पूँजीपतियों के बीच बड़ा कद हो गया है इन वामपंथियों का। यही नहीं कभी ये यूपीए सरकार की समन्वय समिति का बहिष्कार करते हैं (सरकार फिर भी घास नहीं डालती) तो फिर बेहयाई से समिति की बैठक में वापस चले जाते हैं। आखिर घोर मजदूर विरोधी, मानवद्रोही पूँजीवादी लुटेरी नीतियों को "मानवीय" चेहरा जो देना है।

तो बात स्वराज पाल की चल रही थी। उन्होंने पश्चिम बंगाल के लाल पताकाधारी मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य को अद्भुत मुख्यमंत्री बताया और कहा कि राज्य सरकार ने पिछले चार साल के दौरान आर्थिक मोर्चे पर अच्छा प्रदर्शन किया है। यह तारीफ तो मिलनी ही थी वामपंथी बुद्धदेव को। आखिर उनकी सरकार पश्चिम बंगाल में इन लुटेरों के लिए पलक पाँवड़े बिछाये जो बैठी है। अभी-अभी उसने राज्य में विदेशी पूँजी निवेश के क्षेत्र में बड़ी उपलब्धि जो पायी है—इण्डोनेशिया के कुख्यात सलीम समूह (जो इण्डोनेशिया में सुहार्तो सरकार द्वारा कम्युनिस्टों के भारी कत्लेआम का सहभागी रहा है) के साथ 'महाभारत मोटरसाइकिल मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी' लगाने का करार जो किया है। यह समूह बंगाल में औद्योगिक नगरी, स्वास्थ्य सिटी व हाइवे बनाने का भी काम करेगा। और भी कई देशी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ पश्चिम बंगाल में पूँजी निवेश के लिए सबसे सुरक्षित और मुफीद जगह मान रही हैं, क्योंकि उनके रक्षक और सेवाकर्ता वामपंथी जो हैं, जो देश के सबसे बड़े ट्रेड यूनियनों के कर्ताधर्ता भी हैं। वैसे भी बुद्ध दा ने हड़ताल पर अपना विरोध जताते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि वे ऐसा कोई कदम नहीं उठायेंगे जिससे पश्चिम बंगाल में सम्भावित पूँजी निवेश खतरे में पड़ जाये।

खैर, भारत में व्यापार के लिए अपने को बेहद इच्छुक बताते हुए पाल ने कहा कि ब्रिटिश संसदीय प्रतिनिधिमण्डल लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी (संसदीय गरिमा के प्रतीक पुरुष हैं वामपंथी सोमनाथ दा!) से मुलाकात कर आपसी हितों से जुड़े मुद्दों पर बातचीत करेगा। इस दल ने मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा) के महासचिव प्रकाश करात से भी मुलाकात की।

अब बात महज अनिवासी पूँजीपति स्वराज पाल की ही नहीं है, कई और देशी-विदेशी पूँजीपति इन वामपंथियों से बेहद खुश हैं और वे लगातार इनके शीर्ष नेताओं से सम्पर्क साध रहे हैं। उनका मानना है कि ये वामपंथी केन्द्र सरकार की नीतियों को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं और वामपंथी सरकारों वाले राज्य उदारीकरण के दौर के 'मॉडल' राज्य बन रहे हैं।

पिछले दिनों देश का शीर्ष पूँजीपति, रिलायंस उद्योग समूह के अध्यक्ष मुकेश अम्बानी ने मंगलवार को माकपा मुख्यालय गोपालन भवन में माकपा पोलित ब्यूरो सदस्य सीताराम येचुरी से लम्बी मुलाकात की। इससे पूर्व ब्रिटेन के भारतीय मूल के पूँजीपति, इस्पात किंग एल. एन. मित्तल ने माकपा महासचिव प्रकाश करात से भेंट की थी।

एक पखवारे के भीतर देश-दुनिया के पूँजीवादी आकाओं से इतना आदर पाकर मजदूरों के ये तथाकथित रहनुमा भला खुशी से और ज्यादा लाल क्यों न हों!

विलासिता के टापू और भूख से हो रही मौतें

बोलते आंकड़े... चीखती सच्चाइयां...

यह है पूँजीवादी निजाम। यहाँ एक तरफ तो लोग भूख और कुपोषण से मरते रहते हैं, वहीं दूसरी तरफ धनपशुओं की छोटी-सी जमात करोड़ों रुपये अपनी विलासिता पर फूँक देती है। इसी की चन्द बानगियाँ इस सच्चाई का चीख-चीख कर बयान कर रही हैं।

तस्वीर का एक पहलू :

1. अमेरिका की चर्चित गायिका मारिया कैरी अपने पालतू कुत्ते को होटल में एक रात ठहराने के लिए 1270 डॉलर खर्च करती है और उसके लिए 455 डॉलर की सैंडिल खरीदती है। (1 डॉलर =45 रुपये)

2. दुनिया के सबसे खर्चीले अरबपति रोमान एब्रामोविच ने 10 करोड़ डॉलर का एक बोइंग 767 जेट विमान खरीदा, जिसमें तीस लोगों के लिए एक डाइनिंग रूम और सोने की चादर चढ़े सिंक वाला किचन है। उसका दो साल में महज खेल के सामान पर 70 करोड़ डॉलर का खर्च है।

3. अरबपति गायक एल्टन जॉन हर साल 2,93,000 पाउण्ड केवल फूलों पर खर्च करता है। उसका हर माह 20 लाख पाउण्ड का महज जेब खर्च है।
(1 पाउण्ड=80 रुपये)

4. हॉलीवुड की एक और चर्चित अभिनेत्री मैडोना सिर्फ सौन्दर्य प्रसाधन पर 7000 डॉलर खर्च कर देती है। उसने 9 लाख पाउण्ड का काँच का किचन बनवाया है, जिसमें वह दिन में मात्र पांच मिनट गुजारती है।

5. हॉलीवुड का चर्चित अभिनेता टॉम क्रूज केवल अपने दाँतों के रखरखाव पर ही दो करोड़ डॉलर खर्च करता है।

6. भारतीय मूल के लंदन में बसे स्टील किंग लक्ष्मी नारायण मित्तल ने डेढ़ करोड़ पाउण्ड (करीब 120 करोड़ रुपये) में अपना नया बंगला खरीदा है।

तस्वीर का दूसरा पहलू :

1. संयुक्त राष्ट्र विश्व खाद्य कार्यक्रम (डब्ल्यू.एफ.पी.) की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2005 में 60 लाख से ज्यादा लोग भूख के कारण अकाल मौत के शिकार हो गये। रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में भूख से ग्रस्त बच्चों की संख्या इस समय 19 करोड़ है जिन्हें किसी प्रकार की कोई सुविधा नहीं मिल पा रही है। रिपोर्ट के अनुसार पूरे विश्व में 2004 में 85.2 करोड़ लोगों को पर्याप्त भोजन नहीं मिल पा रहा है जो पिछले वर्ष की तुलना में एक करोड़ अधिक है। इसके साथ ही दुनिया में डेढ़ करोड़ बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। कुपोषण के कारण प्रतिदिन लगभग एक लाख लोगों की मौत हो जाती है।

2. सहारा क्षेत्र के अफ्रीकी देशों में भोजन की कमी भयावह स्तर पर पहुँच गयी है, जिसमें लगातार बढ़ोत्तरी जारी है। इलाके की एक तिहाई आबादी कुपोषण की शिकार है। पश्चिमी गोलार्ध के हैती नामक देश में कुपोषण के कारण पाँच साल से कम उम्र के 38 हजार बच्चे हर साल मौत के मुँह में समा रहे हैं।

3. एक अन्तरराष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन की रिपोर्ट के अनुसार बड़े पैमाने पर विटामिन ए, आयरन, आयोडीन, खनिज और अन्य पोषक तत्त्वों की कमी से भारत में पाँच साल से कम उम्र के छह हजार बच्चों की प्रतिदिन मौत हो जाती है। रिपोर्ट के मुताबिक देश में प्रत्येक वर्ष 50 हजार बच्चे विभिन्न विटामिन और खनिज की कमी के कारण विकलांग पैदा होते हैं।

4. भारत में प्रति व्यक्ति सालाना औसत आय महज 23,308 रुपये (1934 रुपये मासिक) है। इसमें 2,22,000 अमेरिकी डॉलर से ज्यादा की सालाना आय वाले 6515 भारतीय धनपशु परिवारों की आय भी शामिल है।

चीन में अमीर और गरीब के बीच बढ़ती खाई ने खतरे के निशान को पार किया

चीन में पूँजीवादी विपथगामी कम्युनिस्टों के 'मण्डी समाजवाद' में अमीरी और गरीबी के बीच की बढ़ती खाई खतरे के निशान को पार कर गई है।

ऊपर की 10 प्रतिशत आबादी देश की कुल धन दौलत के 45 प्रतिशत (लगभग आधे) के ऊपर साँप की तरह कुण्डली मारे बैठी है जबकि इसके उलट 10 प्रतिशत गरीब आबादी के पास इसका बहुत ही कम हिस्सा (1.4 प्रतिशत) ही है।

जाहिर है 1976 में कामरेड माओ त्से तुंग की मौत के बाद राज्यसत्ता पर काबिज हुई देंग सिआओ पिंग की संशोधनवादी मण्डली की ओर से लागू किये जा रहे "बाजार" समाजवाद की सफेद बिल्ली थैले से बाहर आने लगी है। चीन के अन्दर बढ़ रही बेरोजगारी और गरीबी के कारण उभर रही सामाजिक बेचैनी और उथल-पुथल को आम लोगों की ओर से सहयोग मिल रहा है।

हाल की एक रिपोर्ट में ऊपर के 400 व्यक्तियों की औसत दौलत 20 करोड़ डॉलर प्रति अमीर व्यक्ति दर्शाई गई है जिनमें से सात धन पशुओं की जायदाद अरबों डालर में बताई गई है। देश के अन्दर बढ़ रही इस भयानक गैरबराबरी से पैदा होने वाले जन विद्रोह की आशंका से हाकिम काफी फिक्रमन्द बताये गये हैं। जैसे कि यूनिवर्सिटी आफ अलबर्टा के चीनी विशेषज्ञ वेन्गन जिआंग की ओर से चीनी हाकिमों की ओर से शुरू किए आर्थिक सुधारों के आगे चलकर जन विद्रोह के बैरिकेड खड़े होने और राज्यसत्ता के ऊपर पार्टी की पकड़ ढीली पड़ जाने की शंका प्रकट की गई है।

श्रमिकों ने कामरेड को घेरा

मजदूरों की पीठ में एक बार फिर छुरा घोंपा

पश्चिम बंगाल के हुगली जिले में हैदराबाद मोटर इण्डस्ट्रीज लिमिटेड के नौकरी से निकाले (छँटनी किए) गये श्रमिकों ने सी.पी.आई. के मजदूर फ्रण्ट एटक के जनरल सेक्रेटरी गुरुदास दासगुप्ता के विरुद्ध प्रदर्शन किया।

श्रमिकों ने आरोप लगाया है कि दासगुप्ता ने श्रमिकों को नौकरी से बाहर निकालने के मामले में मैनेजमेण्ट से गुप्त समझौता कर लिया है। श्रमिकों की यूनियन के सेक्रेटरी सुखेंदु विश्वास ने आरोप लगाया है कि सी.पी.आई. ने उनसे धोखा किया है और श्रमिकों के हितों से गद्दारी की है। इस कम्पनी ने 31 जुलाई को अपने 70 श्रमिकों को नौकरी से निकाल दिया और उसी दिन से श्रमिकों के जबरदस्त प्रदर्शन के आगे मालिकों को फैक्टरी बन्द करने का कड़वा घूँट पीना पड़ा था।

लेकिन दासगुप्ता ने अपने ओहदे का दुरुपयोग करके और केन्द्र की यूपीए सरकार में अपनी हिस्सेदारी होने के बावजूद अपने प्रभाव का उपयोग न करके श्रमिकों के हितों को बिल्कुल अनदेखा किया और कम्पनी मैनेजमेण्ट से श्रमिक विरोधी एकतरफा समझौता कर लिया।

इसके बाद इन रंगे सियारों के खिलाफ श्रमिकों का रोष भड़क उठा। याद रहे कि सी.पी.आई. के मजदूर फ्रण्ट एटक (जिसके कामरेड दासगुप्ता जनरल सेक्रेटरी हैं) का श्रमिकों के हितों से बेशरमी के साथ गद्दारी करने का लम्बा इतिहास रहा है और चुनावी राजनीति के कीचड़ में लोटपोट करती सी.पी.आई. अपनी इस श्रमिक यूनियन के कुकर्मों को अनदेखा करती रही है।

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

शहीदेआज़म भगतसिंह की पाँच ज़रूरी पुस्तिकाएँ हर नौजवान, हर मज़दूर के लिए ज़रूरी

- क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा
- मैं नास्तिक क्यों हूँ और ड्रीमलैण्ड की भूमिका
- बम का दर्शन और अदालत में बयान
- जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो
- भगतसिंह ने कहा...

जनचेतना के सभी केन्द्रों से प्राप्त करें

अक्टूबर क्रान्ति की चौथी वर्षगाँठ

• लेनिन

25 अक्टूबर (7 नवम्बर) की चौथी वर्षगाँठ निकट आ रही है। यह महान दिवस हमसे जितना ही अधिक दूर होता जा रहा है, उतनी ही अधिक स्पष्टता के साथ हम रूस में सर्वहारा क्रान्ति के महत्त्व को देखते हैं और उतनी ही अधिक गहराई से हम अपने पूरे काम के दौरान अर्जित व्यावहारिक अनुभव पर विचार करते हैं।

अधिक से अधिक संक्षिप्त और बेशक पूर्णता तथा अचूकता से रहित रूप-रेखा में इस महत्त्व तथा इस अनुभव का सारांश इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

रूस में क्रान्ति का तात्कालिक **तथा प्रत्यक्ष लक्ष्य बुर्जुआ-जनवादी लक्ष्य था, अर्थात मध्ययुगीनता के अवशेषों को नष्ट करना और उनका नामोनिशान तक मिटा देना,** रूस से बर्बरता के **इस** कलंक को दूर कर देना और अपने देश में सारी संस्कृति तथा प्रगति की राह में प्रचण्ड बाधा को दूर करना।

हमें इस बात पर गर्व करने का हक है कि हमने यह सफाई अब से एक सौ पचीस वर्ष से भी अधिक पहले की महान फ्रांसीसी क्रान्ति की अपेक्षा अवाम पर, जनसाधारण पर उसके प्रभाव के दृष्टिकोण से कहीं अधिक जोरदार ढंग से, कहीं अधिक तेजी, साहस तथा सफलता के साथ, कहीं अधिक व्यापक रूप से तथा गहराई के साथ की है।

अराजकतावादी तथा टटपुंजियाई जनवादी (अर्थात मेन्शेविक तथा समाजवादी-क्रान्तिकारी, जो उक्त अन्तरराष्ट्रीय सामाजिक कोटि के रूसी नमूने हैं) बुर्जुआ-जनवादी क्रान्ति तथा समाजवादी (**अर्थात** सर्वहारा) क्रान्ति के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में हद से ज्यादा बकवास करते रहे हैं और कर रहे हैं। चार वर्षों ने इस बात को सोलह आने सही साबित कर दिया है की इस बात के बारे में मार्क्सवाद की हमारी व्याख्या और पहले की क्रान्तियों के अनुभव का हमारा मूल्यांकन सही था। हमने बुर्जुआ-जनवादी क्रान्ति को **अंजाम तक** पहुँचा दिया है, जैसा पहले किसी ने नहीं किया था। हम पूर्णतः सचेतन रूप से समझ-बूझकर तथा अडिग रूप से समाजवादी क्रान्ति की दिशा में **आगे** बढ़ रहे हैं, इस बात को जानते हुए कि उसे बुर्जुआ-जनवादी क्रान्ति से कोई चीनी दीवार अलग नहीं करती, इस बात को जानते हुए कि **केवल संघर्ष** द्वारा ही यह तय होगा कि हम कहाँ तक (अंतिम विश्लेषण में) आगे बढ़ेंगे, विशाल तथा उदात्त लक्ष्य का कितना हिस्सा हम पूरा कर पायेंगे और हम अपनी विजयों को किस हद तक सुदृढ़ करने में सफल होंगे। यह तो वक्त ही बतायेगा। परन्तु हम इस समय ही देखते हैं कि समाज के समाजवादी रूपांतरण की दिशा में बहुत ज्यादा—तबाह, थके हुए तथा पिछड़े हुए देश के लिये बहुत ज्यादा—काम कर लिया गया है।

परन्तु आइए, अपनी क्रान्ति के बुर्जुआ-जनवादी सार-तत्त्व के बारे में बात पूरी कर लें। मार्क्सवादियों को यह समझना चाहिए कि इसका क्या अर्थ है। इस बात को समझाने के लिए मैं कुछ जीती-जागती मिसालें दूँगा।

क्रान्ति के बुर्जुआ-जनवादी सार-तत्त्व का मतलब है देश के सामाजिक सम्बन्धों में से (विभिन्न व्यवस्थाओं, संस्थाओं में से) मध्ययुगीनता को, भूदासता को, सामन्तवाद को बिल्कुल खत्म कर दिया जाना।

1917 तक रूस में भूदासता की मुख्य अभिव्यक्तियाँ, लक्षण तथा अवशेष क्या थे? राजतंत्र, सामाजिक श्रेणी-भेद, भू-स्वामित्व तथा भू-व्यवस्था, स्त्रियों की दशा, धर्म और जातीय उत्पीड़न। इन "अवगी की घुड़सालों" में से किसी को भी ले लीजिए—प्रसंगवश यह भी बता दिया जाये की जब सभी उन्नत राज्यों ने अब से सवा सौ, ढाई सौ साल, या उससे भी ज्यादा पहले (इंगलैंड में 1649 में) **अपनी** बुर्जुआ-जनवादी क्रान्तियाँ सम्पन्न की थीं, तब उन्होंने इन घुड़सालों को काफी हद तक गंदा ही छोड़ दिया था,—इन "अवगी की घुड़सालों" में से किसी को भी ले लीजिए : आप देखेंगे कि हमने उन्हें अच्छी तरह साफ कर दिया है। **दस सप्ताह** के भीतर, 25 अक्टूबर (7 नवम्बर) 1917 से लेकर संविधान सभा की बर्खास्तगी (5 जनवरी 1918) तक हमने इस मामले में उससे हजार गुना अधिक काम कर लिया, जितना बुर्जुआ जनवादियों तथा उदारपंथीवादियों (कैडेटों) और टुटपुंजियाई जनवादियों (मेन्शेविकों तथा समाजवादी-क्रान्तिकारियों) ने अपनी सत्ता के **आठ महीनों में** किया था।

इन कायरों, गपबाजों, इन दम्भी नरसिंसों तथा हैमलेटी बौनों ने दफ्ती की तलवारें भाँजीं, लेकिन वे राजतंत्र तक को नष्ट नहीं कर पाये! हमने राजतंत्र के सारे कचरे को इस तरह साफ कर दिया, जिस तरह इससे पहले किसी ने नहीं किया था। हमने उस प्राचीन इमारत की, जिसे सामाजिक श्रेणी-भेद कहते हैं, एक ईंट भी बाकी नहीं छोड़ी (इंगलैंड, फ्रांस तथा जर्मनी जैसे सबसे उन्नत देश भी आज तक इस पद्धति के अवशेषों को पूरी तरह खत्म नहीं कर पाये हैं!)। सामाजिक श्रेणी-भेद की सबसे गहरी जड़ों को, अर्थात भू-स्वामित्व की व्यवस्था में सामन्तवाद तथा भू-दासता के अवशेषों को, हमने चुन-चुनकर उखाड़ फेंका है। "वितर्क किया जा सकता है" (विदेशों में इन वितर्कों का रियाज करने वाले काफी कलमघसीटू, कैडेट, मेन्शेविक तथा समाजवादी-क्रान्तिकारी हैं) कि महान अक्टूबर क्रान्ति ने जो कृषि-सुधार किये हैं, उनका "आखिरकार" क्या नतीजा होगा। इस समय हम इस प्रकार के वितर्कों में समय गँवाने के खाहिशमन्द नहीं हैं, क्योंकि हम इस वितर्क को और इससे सम्बन्धित तमाम वितर्कों को संघर्ष द्वारा तय कर रहे हैं। पर इस हकीकत के खिलाफ वितर्क नहीं किया जा सकता कि टुटपुंजियाई जनवादी आठ महीने तक जमींदारों के साथ, भूदासता की परम्पराओं के संरक्षकों के साथ, "समझौते करते रहे", जबकि हमने कुछ ही हफ्तों के भीतर रूस की सर-जमीन से जमींदारों तथा उनकी सारी परम्पराओं का नामोनिशान तक मिटा दिया।

धर्म को, या स्त्रियों की अधिकारहीनता, या गैर-रूसी जातियों के उत्पीड़न और उनकी असमानता को ले लीजिए। ये सभी बुर्जुआ-जनवादी क्रान्ति की समस्याएँ हैं। छिछोरे टुटपुंजिया आठ महीने तक इनकी बाबत बकवास करते रहे। संसार के **किसी एक भी** अधिकतम विकसित देश में इन सवालों को **बुर्जुआ-जनवादी ढंग से पूरी तरह** हल **नहीं** किया गया है। हमारे देश में अक्टूबर क्रान्ति के बनाये हुए कानूनों द्वारा उन्हें पूरी तरह हल कर लिया गया है। हम धर्म के विरुद्ध असली मानी में लड़े हैं और लड़ रहे हैं। हमने **सारी** गैर-रूसी जातियों को **उनके अपने** जनतंत्र या स्वायत्त प्रदेश दे दिये हैं। हमारे यहाँ रूस में अब स्त्रियों की अधिकारहीनता अथवा अधिकार-अपूर्णता जैसी नीचता, वीभत्सता तथा दुष्टता, सामन्तवाद तथा मध्ययुगीनता का वह घृणास्पद अवशेष बाकी नहीं है, जिसे बिना किसी भी अपवाद के संसार के हर देश का लोभी बुर्जुआ-वर्ग तथा मन्दबुद्धि और भयभीत टुटपुंजिया वर्ग नया रूप दे रहा है।

यह सब बुर्जुआ-जनवादी क्रान्ति का सार-तत्त्व है। डेढ़ सौ और ढाई सौ वर्ष पहले इस क्रान्ति (अथवा यदि हम एक ही सामान्य कोटि के अलग-अलग जातीय रूपों की बात करें, तो इन क्रान्तियों के) नेताओं ने मानवजाति को मध्ययुगीन विशेषाधिकारों से, पुरुषों के साथ स्त्रियों की असमानता से, इस या उस धर्म (या "धर्म के **विचार**" अथवा आम तौर से "धार्मिकता") के लिए राजकीय तरजीह से और जातीय असमानता से मुक्त कर देने का वादा किया था। उन्होंने वादा किया था, पर अपने वादों को पूरा नहीं किया। वे उन वादों को इसलिए पूरा नहीं कर सके कि "निजी सम्पत्ति के पुनीत अधिकारों" के प्रति उनकी "सम्मान की भावना" उनके मार्ग में बाधक थी। हमारी सर्वहारा क्रान्ति इस तिहरी लानत भरी मध्ययुगीनता के और इस "निजी सम्पत्ति के पुनीत अधिकार" के प्रति "सम्मान की भावना" का शिकार नहीं थी।

परन्तु रूस की जातियों के लिए बुर्जुआ-जनवादी क्रान्ति की सफलताओं को सुदृढ़ बनाने के निमित्त हमें आगे बढ़ना चाहिए था और हम आगे बढ़े। हमने आगे बढ़ने के दौरान, अपनी मुख्य और असली सर्वहारा-क्रान्तिकारी, समाजवादी कामों के "उपजात" के रूप में बुर्जुआ-जनवादी क्रान्ति की समस्याओं को हल कर लिया। हमने हमेशा यही कहा कि सुधार क्रान्तिकारी वर्ग-संघर्ष के उपजात हैं। बुर्जुआ-जनवादी सुधार—हमने कहा और व्यवहारतः सिद्ध कर दिया—सर्वहारा, अर्थात समाजवादी क्रान्ति के उपजात हैं। यहाँ यह कहना मुनासिब है की काउत्स्की, हिल्फर्डिंग, मार्तोव, चेर्नोव, हिलकिट, लॉन्गे, मैकडानल्ड तुराती जैसे लोग और "ढाईवें" मार्क्सवाद के अन्य सूरमा बुर्जुआ-जनवादी और सर्वहारा-समाजवादी क्रान्तियों के इस पारस्परिक सम्बन्ध को समझने में असमर्थ थे। इनमें से पहली क्रान्ति बढ़कर दूसरी क्रान्ति का रूप धारण कर लेती है। दूसरी, अपनी राह पर चलते हुए, पहली की समस्याओं को हल करती है। दूसरी, पहली के काम को सुदृढ़ बनाती है। संघर्ष और केवल संघर्ष से ही इस बात का फ़ैसला होता है कि दूसरी किस हद तक पहली से आगे बढ़ जाने में सफल होती है।

सोवियत व्यवस्था स्वयं इस बात का एक अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण या अभिव्यक्ति है कि एक क्रान्ति किस प्रकार बढ़कर दूसरी क्रान्ति का रूप धारण कर लेती है। सोवियत व्यवस्था मजदूरों तथा किसानों को अधिकतम जनवाद प्रदान करती है, इसके साथ ही वह **बुर्जुआ** जनवाद से सम्बन्ध-विच्छेद का और नये विश्व-ऐतिहासिक **प्रकार** के जनवाद, अर्थात सर्वहारा जनवाद या सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के उदय का द्योतक है।

अपनी सोवियत व्यवस्था का निर्माण करने में हमें जिन असफलताओं का सामना करना पड़ता है या हमने जो गलतियाँ की हैं, उनके लिए यदि मरणासन्न बुर्जुआ वर्ग और उसकी दुम के पीछे लगे रहने वाले टुटपुंजिया जनवादियों के कुत्ते तथा सुअर हमें जी भरकर कोसते हैं, हम पर गालियों की बौछार करते हैं और हमारी हँसी उड़ाते हैं, तो उन्हें यह सब कुछ करने दीजिए। हम एक क्षण के लिये भी यह नहीं भूलते कि हमारे यहाँ विफलताएँ और गलतियाँ बहुत रही हैं और बहुत हैं। राज्य-व्यवस्था के एक अभूतपूर्व प्रकार के सृजन जैसे नये, विश्व के इतिहास के लिए नये, काम में विफलताओं तथा गलतियों से कैसे बचा जा सकता है! हम अपनी विफलताओं और गलतियों को सम्भालने के लिए, सोवियत के उसूलों की तामील में सुधार करने के लिए, जो अभी तक बहुत ही दोषपूर्ण ढंग से किया जा रहा है, दृढ़ता से संघर्ष करेंगे। परन्तु हमें इस बात पर गर्व करने का अधिकार है और हम गर्व करते हैं कि सोवियत राज्य का निर्माण **आरम्भ करने** और इस प्रकार विश्व के इतिहास में एक नये युग का, एक ऐसे **नये** वर्ग के प्रभुत्व-युग का **श्रीगणेश करने** का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है, जो हर बुर्जुआ वर्ग पर विजय की ओर, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की ओर, पूँजी की गुलामी से और साम्राज्यवादी युद्धों से मानवजाति की मुक्ति की ओर आगे बढ़ रहा है।

साम्राज्यवादी युद्धों का सवाल, आज सारी दुनिया पर हावी वित्तीय पूँजी की उस अन्तरराष्ट्रीय नीति का सवाल, जो अनिवार्य रूप से नये साम्राज्यवादी युद्धों को जन्म देती है, जो **अनिवार्य रूप से** जातीय उत्पीड़न को, मुट्ठीभर "उन्नत" राष्ट्रों द्वारा कमजोर, पिछड़ी हुई तथा छोटी कौमों के उत्पीड़न, लूट-खसोट और गला-घोंटाई को अत्यधिक उग्र रूप दे देती है-यह सवाल 1914 से पृथ्वी के सभी देशों की परी नीति की आधारशिला रहा है। यह लाखों-करोड़ों लोगों के लिए जिन्दगी और मौत का सवाल इस बात का है कि अगले साम्राज्यवादी युद्ध में, जिनकी बुर्जुआ वर्ग तैयारियाँ कर रहा है और जिसे हमारी आंखों के सामने पूँजीवाद जन्म दे रहा है, 2 करोड़ लोग (1914-1918 के युद्ध में और उससे सम्बन्धित तथा अब तक जारी अन्य "छोटे-मोटे" युद्धों में मारे गये। करोड़ लोगों की तुलना में) मौत के घाट उतारे जायेंगे कि नहीं। यह सवाल इस बात का है कि भावी युद्ध में जो (पूँजीवाद के कायम रहते) अनिवार्य है, 6 करोड़ लोग (1914-1918 के वर्षों में अपंग हुए 3 करोड़ लोगों की तुलना में) अपंग होंगे कि नहीं। इस सवाल के बारे में भी हमारी अक्टूबर क्रान्ति विश्व के इतिहास में एक नये युग के श्रीगणेश का द्योतक थी। समाजवादी-क्रान्तिकारियों और मेन्शेविकों जैसे बुर्जुआ वर्ग के चाकर और उसके प्रशस्ति-गायक, सारी दुनिया के टुटपुंजिया नामधारी "समाजवादी" जनवादी इस नारे का मजाक उड़ाते थे कि "साम्राज्यवादी युद्ध को गृहयुद्ध में बदल दो"। परन्तु वही नारा एकमात्र सत्य साबित हुआ,—अप्रिय, ठेठ, नग्न तथा क्रूर, यह ठीक है, लेकिन देरों शिष्टतम अंधराष्ट्रवादी तथा शान्तिवादी धोखों के बीच एकमात्र सत्य। वे धोखे नष्ट हो रहे हैं। ब्रेस्त की शांति-सन्धि की कलई खुल चुकी है और जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं, वैसे-वैसे उस शान्ति के महत्त्व तथा उसके परिणामों की कलई भी अधिक निर्ममतापूर्वक खुलती जा

(अगले पृष्ठ पर जारी)

अक्टूबर क्रान्ति की चौथी वर्षगाँठ

(पेज 6 का शेष)

रही है, जो ब्रेस्त की शान्ति-सन्धि से भी बदतर है–अर्थात वरसाई की शान्ति-सन्धि। बीते कल के युद्ध और सर पर मँडराते भावी कल के युद्ध के कारणों पर विचार करने वाले करोड़ों लोग अधिकाधिक स्पष्ट, अधिकाधिक प्रत्यक्ष, अधिकाधिक अनिवार्य रूप से इस भयानक सत्य को समझते जा रहे हैं कि साम्राज्यवादी युद्ध और उसे अनिवार्यतः पैदा करने वाली साम्राज्यवादी शांति अथवा दुनिया से (यदि पुराने हिज्जे अभी तक प्रचलित होते, तो मैं "मीर" शब्द को उसके दोनों अर्थों में लिखता)*, इस रौरव से **बोल्शेविक संघर्ष तथा बोल्शेविक क्रान्ति के अतिरिक्त** और किसी उपाय से निस्तार नहीं हो सकता।

बुर्जुआ तथा शान्तिवादी, जनरल तथा तंग-नजर लोग, पूँजीपति तथा दकियानूस, धर्मात्मा ईसाई तथा दूसरे और ढाईवें इन्टरनेशनलों के सभी सूरमा इस क्रान्ति को उन्मत्त होकर बुरा-भला कहते रहे। वे गालियों, लांछनों तथा झूठ की कितनी ही बौछार से इस विश्व ऐतिहासिक तथ्य को धुँधला नहीं कर सकते कि सैकड़ों-हजारों वर्षों में पहली बार गुलामों ने गुलाम-मालिकों के बीच होने वाले युद्ध का उत्तर खुले तौर से इस नारे की घोषणा द्वारा किया है : गुलाम-मालिकों के बीच अपनी लूट के बँटवारे के लिए चलने वाले युद्ध को सभी राष्ट्रों के गुलाम-मालिकों के खिलाफ सभी राष्ट्रों के गुलामों के युद्ध में परिवर्तित कर दो।

सैकड़ों-हजारों वर्षों में पहली बार यह नारा एक अस्पष्ट, अशक्त आशा से बदलकर एक स्पष्ट तथा निश्चित राजनीतिक कार्यक्रम, सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में लाखों-करोड़ों उत्पीड़ित लोगों का कारगर संघर्ष बना है, सर्वहारा वर्ग की पहली विजय बना है, युद्धों की समाप्ति और विभिन्न देशों के संयुक्त बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध सभी देशों के मजदूरों में एकता-स्थापन के संघर्ष की पहली विजय बना है, उस बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ, जो पूँजी के गुलामों की कीमत पर, उजरती मजदूरों की कीमत पर, किसानों तथा मेहनतकशों की कीमत पर शान्ति तथा युद्ध दोनों ही करता है।

यह पहली विजय **अभी अन्तिम विजय** नहीं है और वह हमारी अक्टूबर क्रान्ति को बेमिसाल कठिनाइयों तथा मुसीबतों के बाद, अभूतपूर्व कष्टों के बाद और हमारी ओर से अनेक बेहद बड़ी विफलताओं और गलतियों के बाद हासिल हुई है। किसी भी एक पिछड़े हुए राष्ट्र से इस बात की आशा कैसे की जा सकती थी की वह विफलताओं और गलतियों के बगैर भूमण्डल के सबसे शक्तिशाली तथा सबसे विकसित देशों के साम्राज्यवादी युद्धों को निष्फल बना देगा! हम अपनी गलतियों को स्वीकार करने से नहीं डरते और उन्हें सुधारना सीखने के लिए उन पर सावधानी के साथ नजर डालेंगे। परन्तु यह एक हकीकत है कि सैकड़ों-हजारों वर्षों में पहली बार गुलाम-मालिकों के बीच होने वाले युद्ध का "जवाब" सभी गुलाम-मालिकों **के खिलाफ** गुलामों की क्रान्ति से देने का स्वप्न **पूरी तरह साकार हो गया है**–और तमाम कठिनाइयों के बावजूद उसे साकार किया जा रहा है।

हमने शुरुआत कर दी है। यह बात महत्व नहीं रखती है कि ठीक कब, किस समय और किस राष्ट्र के सर्वहारा इस प्रक्रिया को पूरा करेंगे। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गतिरोध टूट गया है, मार्ग खुल गया है, पथ प्रशस्त किया जा चुका है।

सभी देशों के बुर्जुआ श्रीमानो, अमरीकी से जापानी, जापानी से अमरीकी, ब्रिटिश से फ्रांसीसी इत्यादि "पितृभूमि की रक्षा" की अपनी मक्कारी जारी रखिये! दूसरे तथा ढाईवें इटरनेशनलों के सूरमा श्रीमानो, आप हो चुके हैं। यह बात अकारण नहीं है कि हमारे शत्रु हमें "वज्र-दृढ़" और "हड्डीतोड़-नीति" के प्रवर्तक कहते हैं। परन्तु हमने,–कम से कम किसी हद तक–एक कला और सीखी है, जो क्रान्ति के लिये नितांत आवश्यक है,–अर्थात लचीलापन, अर्थात वस्तुपरक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए कार्यनीति में तेजी से और यकायक परिवर्तन कर देने की योग्यता और यदि पहले वाला रास्ता किसी समय-विशेष पर अनुपयोगी, असम्भव सिद्ध हो, तो अपनी लक्ष्य-सिद्धि के लिए दूसरा मार्ग चुन सिखाया है।

हम लोग, जिन्होंने इन तीन या चार वर्षों के दौरान (यकायक मोर्चा बदलना आवश्यक होने पर) यकायक मोर्चा बदले देना कुछ सीख लिया है, बड़ी लगन, ध्यान और अध्यवसाय के साथ (यद्यपि अभी काफी लगन, ध्यान और अध्यवसाय के साथ नहीं) मोर्चे में एक नया परिवर्तन करना सीख रहे हैं, "नयी आर्थिक नीति" सीख रहे हैं। सर्वहारा राज्य को एक सतर्क, मेहनती तथा होशियार "मालिक", एक सुलझा हुआ **थोक व्यापारी** बन जाना चाहिए–नहीं तो वह कभी भी छोटे

जोसेफ स्तालिन क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों और मजदूर कार्यकर्ताओं की बैठक में बोलते हुए

सारी दुनिया के सभी शान्तिवादी तंग-नजरों और दकियानूसों के साथ (1912 के बैसेल घोषणापत्र के नमूने पर[3]) नये "बैसेल घोषणापत्रों" द्वारा साम्राज्यवादी युद्धों के खिलाफ संघर्ष के साधनों के सवाल से "कतराते" रहिये! **पहली बोल्शेविक क्रान्ति ने** पृथ्वी के **पहले दस करोड़ लोगों को** साम्राज्यवादी युद्ध, साम्राज्यवादी जगत के चंगुल से छुड़ा दिया है। इसके बाद जो क्रान्तियाँ होंगी, वे समस्त मानवजाति को ऐसे युद्धों तथा ऐसे जगत से बचा लेंगी।

हमारा आखिरी और अधिक से अधिक महत्त्वपूर्ण, अधिक से अधिक कठिन, अधिक से अधिक अपूरित काम आर्थिक निर्माण करना है, विध्वस्त सामन्ती और अर्द्धविध्वस्त पूँजीवादी इमारत के स्थान पर नये समाजवादी इमारत की आर्थिक बुनियाद डालना है इसी सबसे महत्त्वपूर्ण तथा सबसे कठिन काम में हमारे यहाँ सबसे अधिक विफलताएँ हुई हैं, सबसे ज्यादा गलतियाँ हुई हैं। ऐसे सार्वभौमिक पैमाने का नया काम बिना विफलताओं के, बिना गलतियों के आखिर शुरू कैसे किया जा सकता है। हम ठीक उसी समय अपनी "नयी आर्थिक नीति" द्वारा अपनी बहुत-सी गलतियों को ठीक कर रहे हैं, हम सीख रहे हैं कि इन गलतियों के बगैर छोटे किसानों के देश में समाजवादी इमारत का निर्माण आगे किस प्रकार किया जाये।

कठिनाइयाँ अनन्त हैं। परन्तु हम अनन्त कठिनाइयों से जूझने के आदी लेने की योग्यता।

उत्साह की लहर पर आगे बढ़ते हुए, पहले जनता का राजनीतिक उत्साह और फिर सैनिक उत्साह जागृत करके हमने यह हिसाब लगाया कि हम इस उत्साह के बल पर सीधे-सीधे उतने ही महान आर्थिक (जितने आम राजनीतिक, जितने सैनिक) कार्यभार सम्पन्न कर लेंगे। हमने हिसाब लगाया–बल्कि यह कहना अधिक सच होगा कि हम काफी हिसाब लगाये बिना ही यह मान बैठे–कि हम सीधे-सीधे सर्वहारा राज्य के हुक्मनामों द्वारा छोटे किसानों के देश में कम्युनिस्ट ढंग से राजकीय उत्पादन तथा राजकीय वितरण संगठित कर सकेंगे। अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि हम गलती पर थे। कम्युनिज्म में संक्रमण की तैयारी के लिए, बरसों की कोशिशों द्वारा **तैयारी के लिए**, कई संक्रमणकालीन अवस्थाओं से–राजकीय पूँजीवाद तथा समाजवाद से–गुजरना आवश्यक होता है। सीधे उत्साह के बल पर नहीं, बल्कि महान क्रान्तिजनित उत्साह की सहायता के तहत, निजी हितों के, निजी दिलचस्पी के, व्यापारिक लाभ के उसूलों पर हमें इस छोटे किसानों के देश में राजकीय पूँजीवाद के रास्ते समाजवाद तक पहुंचाने वाले ठोस पुल का निर्माण करना चाहिए, अन्यथा हम कम्युनिज्म की मंजिल पर कभी नहीं पहुँचेंगे, दसियों करोड़ लोगों को कम्युनिज्म की मंजिल पर कभी नहीं ले जा सकेंगे। जीवन ने हमें यही सिखाया है। क्रान्ति के वस्तुपरक विकासक्रम ने हमें यही किसानों के देश को आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ा करने में सफल नहीं होगा ; इस समय, मौजूदा परिस्थितियों, पूँजीवादी (फिलहाल पूँजीवादी) पश्चिम के साथ-साथ कम्युनिज्म में संक्रमण का और कोई रास्ता नहीं है। लगता है कि एक आर्थिक कोटि के रूप में थोक व्यापारी और कम्युनिज्म के बीच उतना ही अन्तर है, जितना जमीन और आसमान के बीच। परन्तु यह उन अन्तरविरोधों में से एक है, जो जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में छोटी किसानी अर्थव्यवस्था से राजकीय पूँजीवाद के रास्ते समाजवाद तक ले जाता है। वैयक्तिक हित-प्रेरणा से उत्पादन बढ़ेगा और हर कीमत पर उत्पादन बढ़ाना हमारा मुख्य काम है। थोक व्यापार लाखों-लाख छोटे किसानों को आर्थिक दृष्टि से एकताबद्ध करता है, वह उन्हें वैयक्तिक हित-प्रेरणा प्रदान करता है, उनका एक दूसरे के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है और उन्हें अगले कदम की ओर, स्वयं उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान सम्बन्धों तथा यूनियनों के विभिन्न रूपों की ओर, ले जाता है। हम अपनी आर्थिक नीति में आवश्यक परिवर्तन करने में जुट गये हैं। इस क्षेत्र में हमें कुछ सफलताएँ भी मिल चुकी हैं, जो सच है कि बड़ी नहीं हैं, आंशिक हैं, पर सब कुछ के बावजूद वे निस्संदेह सफलताएँ हैं। नये "सबक" के इस क्षेत्र में हम अपनी प्राथमिक कक्षा समाप्त कर रहे हैं। जुटकर अध्यवसाय के साथ अध्ययन करके, अपने हर कदम को व्यावहारिक अनुभव की कसौटी पर परखकर, शुरू किये गये काम में बार-बार परिवर्तन करने, अपनी गलतियों को सुधारने और अत्यन्त सावधानी के साथ उनके सारतत्व का विश्लेषण करने से भयभीत न होकर हम इससे ऊपर की कक्षाओं में भी पहुँच जायेंगे। हम सारा "पाठ्यक्रम" पूरा कर लेंगे, हालाँकि विश्व अर्थ-व्यवस्था तथा विश्व राजनीति की वर्तमान अवस्था ने "इस पाठ्यक्रम" को उससे कहीं अधिक लम्बा और कठिन बना दिया है, जितना कि हम चाहते थे। हमें चाहे जो कीमत चुकानी पड़े, संक्रमण-काल की कठिनाइयाँ चाहे जितनी भीषण हों–विनाश, अकाल और तबाही के बावजूद-हम हिम्मत नहीं हारेंगे और अपने ध्येय को विजयपूर्वक लक्ष्य तक पहुँचायेंगे।

14 अक्टूबर, 1921

(18 अक्टूबर, 1921 को प्रकाशित संकलित रचनाएँ, खण्ड 44, पृ. 144-152

* रूसी भाषा में "मीर" शब्द के दो अर्थ होते हैं : "शान्ति" और "दुनिया"। पुराने रूसी हिज्जे के अनुसार ये दोनों शब्द अलग-अलग ढंग से लिखे जाते थे। – सं.

टिप्पणियाँ

1. **अवगी की घुड़सालें**–यूनानी पुराणकथाओं के अनुसार एलिस के राजा अवगी की बेहद बड़ी-बड़ी घुड़सालें, जो बहुत बरसों से गन्दी पड़ी हुई थीं। हर्कुलीज ने उन्हें एक दिन में साफ कर डाला। "अवगी की घुड़सालें" किसी गन्दी और अत्यन्त अव्यवस्थित चीज को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

2. **ढाईवाँ इन्टरनेशनल** नाम उस अन्तरराष्ट्रीय संघ को दिया गया था जिसकी स्थापना फरवरी 1921 में वियेना में हुए क्रान्तिकारी मजदूर-समुदायों के दबाव से कुछ समय के लिए दूसरे इन्टरनेशनल से हट गई मध्यमार्गी पार्टियों और दलों के सम्मेलन में की गयी। 1923 में उसका दूसरे इन्टरनेशनल में विलय हो गया।

3. **बैसेल घोषणापत्र**–युद्ध विषयक वह घोषणापत्र, जो 24-25 नवम्बर, 1912 को बैसेल (स्विट्जरलैण्ड) में हुई दूसरे इन्टरनेशनल की असाधारण कांग्रेस में अनुमोदित किया गया था। वह आसन्न साम्राज्यवादी युद्ध के लूटपरक स्वरूप पर जोर देता था और सभी देशों के मजदूरों का शान्ति के लिए तथा युद्ध के खतरे के खिलाफ डटकर संघर्ष करने के वास्ते आह्वान करता था। उसमें कहा गया था कि यदि युद्ध छिड़ता है, तो समाजवादियों को युद्धजनित आर्थिक और राजनीतिक संकटों से लाभ उठाकर समाजवादी क्रान्ति के लिए अपना संघर्ष तीव्रतर बना देना चाहिए। दूसरे इन्टरनेशनल के काउत्स्की, वानडरवेल्डे आदि नेताओं ने कांग्रेस में इस युद्ध विरोधी घोषणापत्र का समर्थन किया था। लेकिन साम्राज्यवादी विश्वयुद्ध शुरू होते ही उन्होंने उसे भुला दिया और वे अपनी साम्राज्यवादी सरकारों की हिमायत करने लगे।

पूँजीवादी न्यायपालिका अन्याय और असमानता की पक्षधर

(पेज 1 का शेष)

उसके द्वारा किये जाने वाले काम की गुणवत्ता के बजाय औपचारिक चयन प्रक्रिया या कागजी डिग्री के आधार पर किया जाये। कोई व्यक्ति औपचारिक चयन प्रक्रिया से गुजरा है या नहीं यह उस व्यक्ति की मर्जी पर निर्भर नहीं है। हो सकता है सम्बन्धित विभाग ने लम्बे समय से औपचारिक चयन प्रक्रिया के जरिये भर्ती ही बन्द कर रखी हो जैसा कि आजकल अनेक विभागों में चलन बनता जा रहा है। चपरासी-चौकीदारी, माली के काम जैसे अनेक तरह के कामों को करने के लिए कर्मचारियों की भर्तियाँ लम्बे समय से औपचारिक चयन प्रक्रिया के जरिये नहीं हो रही हैं क्योंकि इन कामों को दिहाड़ी या ठेके पर करवाने का चलन जोर पकड़ता जा रहा है। दूसरे, क्या व्यहवार में ऐसा नहीं देखा गया है कि तरह-तरह के जोड़-जुगाड़ से कागजी डिग्रियाँ हासिल करने वाले लोगों के मुकाबले किसी विशेष काम को करने में वे व्यक्ति ज्यादा सक्षम और कुशल हैं जिनके पास उस तरह की डिग्रियाँ नहीं हैं। और यह भी कि क्या महज औपचारिक चयन प्रक्रिया से गुजरने और कागजी डिग्रियाँ हासिल कर लेने से विश्वसनीयता और उत्तरदायित्व बोध उत्पन्न हो जाता है। महज सामान्य विवेक और तर्कपरकता के आधार पर सुप्रीम कोर्ट के तर्कों के बचकानेपन को समझा जा सकता है।

किसी व्यक्ति की योग्यता आँकने के इस कूपमण्डूकी पैमाने के आधार पर सुप्रीम कोर्ट ने 'योग्य' व्यक्तियों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिये ऊँची जनखाहें देने की सिफारिश की है। भौतिक प्रोत्साहनों के जरिये व्यक्ति की कार्यकुशलता बढ़ाने का यह जाना-पहचाना पूँजीवादी तर्क है जो मध्यवर्ग के कूपमण्डूक बुद्धिजीवियों के बीच काफी लोकप्रिय है। जाहिर है सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले से यह समुदाय काफी प्रसन्न होगा। लालच और स्वार्थ को वर्ग समाज की बुराइयों की जगह मनुष्य की प्रकृति मानने वाली यह पूँजीवादी सोच इस पर विश्वास कर ही नहीं सकती कि कोई ऐसा समाज हो सकता है जिसमें लोग नैतिक प्रोत्साहनों से प्रेरित होकर काम कर सकते हैं।

पूँजीवादी समाज में न्यायाधीश भी वर्गीय पूर्वाग्रहों और वर्गीय सोच से मुक्त भला कैसे हो सकते हैं। पूँजीवादी न्यायपालिका भी पूँजीवादी राज्यसत्ता का ही अंग होती है। यह एक बहुत बड़ा विभ्रम है कि पूँजीवादी समाज में न्यायपालिका वर्गोपरि होती है और उससे न्याय की उम्मीद की जा सकती है। असमानता और अन्याय की बुनियाद पर टिके समाज और सत्ता के एक अंग के रूप में ही पूँजीवादी न्यायपालिका अपनी विशेष भूमिका निभाती है। पूँजीवादी शासन-प्रशासन में अन्याय साफ तौर पर दिखायी देता है। न्यायपालिका के साथ ऐसा नहीं होता। जनता को शासन-प्रशासन से सीधे टकराना होता है जबकि न्यायपालिका कभी-कभार शासन-प्रशासन के खिलाफ भी खड़ी नजर आती है और कभी-कभी किसी समर्थ व्यक्ति के खिलाफ कमजोर के पक्ष में भी खड़ी नजर आती है। इसलिए उसकी निष्पक्षता का भ्रम पैदा होता है। लेकिन भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में सुप्रीम कोर्ट ने जिस तरह एक के बाद एक जनविरोधी फैसलों की झड़ी लगा दी है उससे उसकी निष्पक्षता का मिथक चूर होता जा रहा है। उसका पूँजीपरस्त चेहरा आज लोगों को ज्यादा साफ नजर आने लगा है। सुप्रीम कोर्ट के इस ताजा फैसले ने भी न्यायपालिका के असली चरित्र को लोगों के सामने उजागर किया है।

सरकारी नौकरियों में वेतन निर्धारण इस बुनियादी सोच के आधार पर किया जाता है कि मानसिक श्रम शारीरिक श्रम से श्रेष्ठ होता है। अफसर, बाबू और चपरासी के वेतनमानों में फर्क का बुनियादी आधार यही है। इसी आधार पर एक कुशल और अकुशल मजदूर के वेतन के बीच फर्क किया जाता है। हर किस्म का मानवीय श्रम समाज के लिए आवश्यक और उपयोगी है और व्यक्तियों के श्रम करने की क्षमता में मौजूद प्राकृतिक विभेद के अलावा 'अन्य सभी विभेद समाज प्रदत्त होते हैं इस सीधी-सादी सच्चाई को स्वीकार करना पूँजीवादी समाज की सेहत के लिए अच्छा नहीं है। इसलिए, योग्यताओं और क्षमताओं में फर्क का तर्क देकर भौतिक प्रोत्साहनों के जरिये व्यक्ति को क्रियाशील करने की कोशिश की जाती है। सुप्रीम कोर्ट ने अपने निर्णय में इसी परम्परागत सोच का सहारा लिया है।

अगर व्यक्ति को यह विश्वास हो जाये कि उसके श्रम का उपयोग कुछ व्यक्तियों के निजी लाभ के लिए नहीं बल्कि सामाजिक उपयोग के लिए हो रहा है तो वह पूरी क्षमता के साथ अपना श्रम खुशी-खुशी समाज को देगा और बदले में समाज उसकी आवश्यकताओं को पूरा करेगा। ऐसे में किसी किस्म के भौतिक प्रोत्साहनों के बिना व्यक्ति नैतिक प्रोत्साहनों और सहज मानवीय गुणों के चलते श्रम करेगा और पूरे समाज के उपयोग के लिये सामाजिक सम्पदा का निर्माण करेगा। ऐसा केवल तभी सम्भव है जब उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व खत्म कर सामूहिक स्वामित्व कायम हो, इस बुनियाद पर समाज के राजीतिक-सामाजिक ढाँचे का निर्माण हो और श्रम की श्रेष्ठता एवं गरिमा की बुनियाद पर एक नयी संस्कृति विकसित हो। ऐसे समाज का निर्माण समाज का मेहनतकश वर्ग ही कर सकता है, दूसरों के श्रम पर पलने वाले परजीवियों की जमातें नहीं।

यह कोई काल्पनिक दुनिया या दिवास्वप्न नहीं है। विगत शताब्दी में अनेक देशों में मेहनतकशों ने अपनी सत्ताएँ कायम करने के बाद उन्हीं आधारों पर नये समाज और नये मानव के निर्माण की महायात्रा की शुरुआत की थी और इस दिशा में कई बड़े कदम आगे बढ़ाये थे। रूस और चीन जैसे अनेक देशों में जब तक मेहनतकशों का समाजवाद कायम था, उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व, सत्ता में जनता की वास्तविक भागीदारी और श्रम की श्रेष्ठता पर आधारित समाज का निर्माण शुरू हुआ था। मानसिक एवं शारीरिक श्रम के बीच भेद और इस आधार पर कायम बुर्जुआ अधिकारों को जड़ से खत्म करने, भौतिक प्रोत्साहनों के स्थान पर नैतिक प्रोत्साहनों के जरिये सामाजिक श्रम को क्रियाशील कर सामाजिक उत्पादन को बढ़ाने की दिशा में अनेक सफल प्रयोग किये गये थे। दुनिया के मेहनतकश अवाम का यह ऐतिहासिक दुर्भाग्य था कि ये समाज व्यवस्थाएँ अपनी अगली मंजिलों मे आगे नहीं बढ़ सकीं और नये मानव को गढ़ने का प्रयोग जारी नहीं रह सका। लेकिन विगत शताब्दी के इन महान सामाजिक प्रयोगों ने दुनिया की जनता को दिखा दिया था कि श्रम की सत्ता कायम कर वास्तविक समता पर आधारित समाज की रचना कोई ख्याली पुलाव नहीं है। इसे हकीकत में बदला जा सकता है।

आज जब हम साम्राज्यवादी-पूँजीवादी बर्बरता के नये दौर में जी रहे हैं। और नये विकल्पों की तलाश में भटक रहे हैं तो पिछली शताब्दी के ये प्रयोग हमारे सामने होने चाहिए। क्योंकि मानवता के सुन्दर भविष्य के रास्ते वहीं से फूटेंगे। इतिहास की स्वाभाविक गति भी हमें उसी दिशा में धकेल रही है। अगर हम मेहनतकश अवाम की नजर से दुनिया को देखेंगे, मध्यवर्गीय कूपमण्डूक बुद्धिजीवियों की नजर से नहीं, तो हमें भी यह रास्ता साफ नजर आयेगा।

अक्टूबर क्रान्ति की 88वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

(पृष्ठ 1 से आगे)

से नाश की प्रक्रिया शुरू की जा सकती है और समाजवाद का निर्माण फिर किया जा सकता है।

सदियों पुरानी धारणाओं को तोड़कर अक्टूबर क्रान्ति ने साबित कर दिया कि मेहनतकश लोग राजकाज कभी चला सकते हैं और निजी स्वामित्व को खत्म करके प्रगति की चमत्कारी रफ्तार हासिल की जा सकती है।

अक्टूबर क्रान्ति ने पूँजीपतियों और उनके पहले के तमाम मालिकों द्वारा हजारों वर्षों के दौरान जनता में कूट-कूटकर भरी गई इस बात को झूठा साबित किया कि मेहनतकश लोग सिर्फ काम कर सकते हैं, "ज्ञानी" लोगों की मदद से राजकाज चलाना तो मालिक लोगों का काम है। राज्यसत्ता पर काबिज होने के बाद महान लेनिन की बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में सोवियत संघ के मजदूरों और मेहनतकश जनता ने न केवल पश्चिमी पूँजीवादी देशों के संयुक्त हमले का मुकाबला किया और उनके समर्थन से तोड़फोड़ की कार्रवाइयों में लगे देशी प्रतिक्रियावादियों को कुचल डाला, बल्कि भुखमरी और अकाल झेलकर भी साम्राज्यवादियों की आर्थिक नाकेबन्दी के सामने घुटने नहीं टेके और दिन-रात एक करके समाजवादी अर्थव्यवस्था का निर्माण किया। दस वर्षों के भीतर उत्पादन के साधनों पर निजी मालिकाने का खात्मा करके विविध रूपों में सामाजिक मालिकाना कायम कर दिया गया।

जल्दी ही, शुरुआती संकटों से उबरकर समाजवाद आगे को लम्बे डग भरने लगा। पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान, उद्योग और कृषि के क्षेत्र में उत्पादन-वृद्धि के ऐसे रिकार्ड कायम हुए जिन्होंने औद्योगिक क्रान्ति को भी मीलों पीछे छोड़ दिया। यह पूँजीवादी प्रचार एकदम झूठा साबित हुआ कि सर्वहारा वर्ग के राज्य के मालिकाने वाले कारखाने और सामूहिक खेती में उत्पादन का काम सुचारु रूप से चल ही नहीं सकता। काम न केवल सुचारु रूप से चला, बल्कि उत्पादन-वृद्धि की ऐसी रफ्तार दुनिया ने पहले कभी नहीं देखी थी। और यही नहीं, मजदूरों ने सामूहिक तौर पर मैनेजमेण्ट के कामों को भी ज्यादा-से-ज्यादा खुद सम्हाल लिया और खुद ही मशीनों में सुधार की नई-नई तरकीबें भी ईजाद करने लगे। समाजवाद के वैज्ञानिकों ने बिना पश्चिमी मदद के नये-नये आविष्कार करके सदियों पीछे छूट गये रूस को बीस वर्षों के भीतर पश्चिमी देशों की टक्कर में ला खड़ा किया।

केवल आर्थिक प्रगति और समानता के स्तर पर ही नहीं, सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर भी सोवियत संघ ने चमत्कारी उपलब्धियाँ हासिल कीं, जिन्हें पश्चिमी पूँजीवादी देशों के बुर्जुआ बुद्धिजीवियों और अखबारों को भी स्वीकार करना पड़ा। वेश्यावृत्ति और यौनरोगों का और बलात्कार जैसे अपराधों का पूरी तरह खात्मा हो गया। शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधा पूरी आबादी को समान स्तर पर मुहैया की जाने लगी। आम मजदूरों के लिए तरह-तरह के नाटक, फिल्म व सांस्कृतिक कार्यक्रम तैयार किये जाने लगे और उन्हें मनोरंजन और घर-परिवार के लिए पर्याप्त समय भी मिलने लगा। ज्यादा से ज्यादा बड़े पैमाने पर स्त्रियाँ चूल्हे-चौखट की गुलामी से मुक्त होकर उत्पादन के अतिरिक्त अन्य सामाजिक गतिविधियों में भी हिस्सा लेने लगीं।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान पूरे यूरोप को रौंद रही हिटलर की नात्सी सेनाओं को सोवियत संघ की लाल सेना द्वारा धूल चटा देना खुद में एक चमत्कार था जो सिर्फ इसलिए सम्भव हो सका कि सोवियत जनता न सिर्फ हर कीमत पर समाजवाद की हिफाजत करना चाहती थी, बल्कि समाजवाद के घोर शत्रु फासिस्टों को तबाह कर देने के लिए कटिबद्ध थी। पूरी दुनिया को फासीवाद से मुक्ति दिलाने में सोवियत संघ ने अपने दो करोड़ लोगों की कुर्बानी देकर वीरता का एक नया महाकाव्य रच डाला।

अक्टूबर क्रान्ति के तोपों के धमाकों के साथ एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के तमाम उपनिवेशों में साम्राज्यवाद-विरोधी मुक्ति संघर्ष की एक नई चेतना पैदा हुई। साथ ही, भारत सहित इन सभी देशों का मजदूर वर्ग, जिसने अभी सिर्फ अपनी आर्थिक माँगों के लिए यूनियन बनाकर लड़ने की शुरुआत की थी, वह तेजी से राजनीतिक संघर्ष की राह पर भी आगे बढ़ा और अपनी राजनीतिक पार्टी बनाकर नई सामाजिक क्रान्ति की तैयारियों में लग गया।

1917 से लेकर 1953 में स्तालिन की मृत्यु तक, जब तक सोवियत संघ में समाजवाद कायम था, उसने पूरी दुनिया के हर कोने में जारी जन-मुक्ति संघर्ष को हर तरह का समर्थन-सहयोग दिया और औपनिवेशिक गुलामी के दौर के खात्मे में अहम भूमिका निभाई।

समाजवाद की अस्थायी हार और पूँजीवाद की पुनर्स्थापना का दौर फिर भी बुझी नहीं है अक्टूबर क्रान्ति की मशाल!

स्तालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ में ख्रुश्चेव के नेतृत्व में एक नये किस्म के पूँजीपति वर्ग का शासन कायम हो गया। ये पार्टी और राज्य मशीनरी के नौकरशाह थे जो लाल झण्डा, पार्टी और समाजवाद की आड़ लेकर वास्तव में जनता की सम्पत्ति के मालिक बन बैठे थे। यह नये किस्म का राजकीय पूँजीवाद था। 1990 आते-आते यह राजकीय पूँजीवाद खुले निजी पूँजीवाद में बदल गया। सभी नकाब और मुलम्मे उतर गये। असलियत सामने आ गई। सोवियत संघ भी टूट गया।

यह वैसे दौर था, जब न केवल पूर्वी यूरोप के देशों में खुला पूँजीवाद बहाल हो गया था, बल्कि 1976 में माओ त्से-तुङ की मृत्यु के बाद चीन में भी "बाजार समाजवाद" के नाम पर पूँजीवाद बहाल हो चुका था।

दुनिया भर के साम्राज्यवादियों और पूँजीपतियों के भोंपू लगातार चीखने लगे कि समाजवाद को हमेशा-हमेशा के लिए नेस्तनाबूद कर दिया गया, कि अक्टूबर क्रान्ति की मशाल हमेशा-हमेशा के लिए बुझा दी गई। क्या यह सच है?

इतिहास कहता है—नहीं! पहले भी ऐसा कई बार हुआ है कि क्रान्तिकारी वर्ग अपनी अन्तिम जीत के पहले सत्ताधारी वर्गों से कई बार परास्त हुए हैं। पहले भी कई बार क्रान्तियों का पहला चक्र अधूरा या असफल रह गया है और फिर उनके नये चक्र ने इतिहास के नये युग की शुरुआत की है। स्वयं पूँजीवाद सामन्तवाद से तीन सौ वर्षों तक लड़ने और कई-कई बार पराजित होने के बाद ही अन्तिम जीत हासिल कर सका।

सर्वहारा वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच के विश्व-ऐतिहासिक महासमर का अभी पहला चक्र पूरा हुआ है। नया चक्र अब शुरू हुआ है। पूरी दुनिया में अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करणों का निर्माण अवश्यम्भावी है।

पर इतना ही कहना काफी नहीं। आज विश्व स्तर पर चरम संकटग्रस्त पूँजीवाद मेहनतकशों पर जो कहर बरपा कर रहा है, उससे निजात पाने के लिए अक्टूबर क्रान्ति की मशाल से नई क्रान्तियों का दावानल भड़काना होगा। और इसके लिए जरूरी है कि मेहनतकश अवाम और उसका इंकलाबी हिरावल दस्ता समाजवाद की फिलहाली हार के सभी कारणों को भलीभाँति समझे।

●

7 नवम्बर* - एक नयी ऐतिहासिक तिथि

• अल्बर्ट रीस विलियम्स

जबकि पेत्रोग्राद में गश्ती दस्तों के बीच झड़पें हो रही थीं और गर्मागर्म बहसें चल रही थीं, सारे रूस से यहाँ लोग आ रहे थे। वे स्मोल्नी में आयोजित सोवियतों की दूसरी अखिल-रूसी कांग्रेस के प्रतिनिधि थे।

स्मोल्नी, जहाँ पहले अभिजात वर्ग की लड़कियों के लिए स्कूल था, अब सोवियतों का केन्द्र था। नेवा के तट पर स्थित यह विशाल राजसी भवन दिन के समय उदास-उदास और फीका-फीका लगता था। मगर रात को सैकड़ों लैम्पों से प्रकाशमान खिड़कियों की शोभा से यह बड़े मन्दिर—क्रान्ति के मन्दिर—के समान दिखाई पड़ता था। द्वार-मण्डपों के सामने दो स्थानों पर अलाव जलते रहते थे, जिनकी लौ वेदी की ज्योति की भाँति थी। आग के गिर्द लम्बे कोट पहने सैनिक चौकसी करते रहते थे। यहाँ अगणित गरीबों और अभावग्रस्त व्यक्तियों की आशाएँ एवं अभ्यर्थनाएँ केन्द्रीभूत थीं। यहीं वे दीर्घकालीन उत्पीड़न और अत्याचारों से मुक्ति पाने की आशाएँ लगाये हुए थे। यहीं उनके जीवन-मरण की समस्याओं को हल करने का प्रयास हो रहा था।

उस रात मैंने फटे-पुराने कपड़े पहने एक दुबले-पतले मजदूर को अन्धेरे मार्ग पर धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए देखा। उसने अचानक अपना सिर ऊँचा उठाकर स्मोल्नी के विशाल अग्रभाग की ओर देखा, जो गिरती हुई बर्फ के बीच जगमगा रहा था। सिर से टोपी उतारकर वह अपने हाथों को फैलाए हुए वहाँ कुछ क्षण खड़ा रहा। उसके बाद जोरों से चिल्लाता हुआ "कम्यून! जनता! क्रान्ति!", वह आगे बढ़ा और दरवाजों से प्रवाहमान भीड़ में शामिल हो गया।

ये प्रतिनिधि युद्ध के मोर्चे, निष्कासन, जेलों और साइबेरिया से स्मोल्नी पहुँचे थे। वर्षों तक उन्हें पुराने साथियों के बारे में कोई सूचना नहीं मिली थी। अब अचानक एक-दूसरे को पहचानकर वे खुशी से चिल्ला उठते, एक-दूसरे से गले मिलते, कुछ कहते-सुनते और क्षणिक आलिंगन के पश्चात वे शीघ्रता से सम्मेलनों, दल की बैठकों और अन्तहीन सभाओं में व्यस्त हो जाते।

स्मोल्नी अब सार्वजनिक सभा के बड़े मंच के सदृश हो गया था, जहाँ विशाल शिल्पशाला के कोलाहल की भाँति सशस्त्र क्रान्ति के लिए आह्वान करने वालों की हुंकार, श्रोताओं की सीटियाँ अथवा फर्श पर पैर पटकने की आवाजें, चुप कराने के लिए घण्टी बजने की आवाज, सन्तरियों के हथियारों की खनखनाहट, सीमेन्ट के फर्श पर मशीनगनों की रगड़ और क्रान्तिकारी गीतों का समवेत गान सुनाई पड़ता था और जो लेनिन और जिनोव्येव के गुप्त स्थान से वहाँ प्रकट होने पर तुमुल हर्षध्वनि एवं तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा था।

हर चीज वहाँ तीव्र गति से हो रही थी, वातावरण में तनाव था, जो प्रति क्षण बढ़ता जा रहा था। प्रमुख कार्यकर्ता तो मानो अन्तहीन शक्ति से ओतप्रोत थे, उनकी कार्य-क्षमता चमत्कारपूर्ण थी, क्योंकि वे बिना सोए, बिना थके कार्य में संलग्न थे और क्रान्ति की महत्त्वपूर्ण समस्याओं का साहस के साथ सामना कर रहे थे।

25 अक्टूबर (7 नवम्बर) की इस रात को दस बजकर चालीस मिनट पर ऐतिहासिक बैठक शुरू हुई, जिसके परिणाम रूस और सारे संसार के भविष्य के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावकारी होने वाले थे। अपने-अपने गुटों की बैठकों से प्रतिनिधि विशाल सभा-कक्ष में आये। बोल्शेविक-विरोधी दान सभापति था। उसने चुप रहने के लिए घण्टी बजाते हुए घोषणा की, "सोवियतों की दूसरी कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की कार्यवाही अब शुरू होती है।"

सर्वप्रथम कांग्रेस की कार्यसंचालन समिति (अध्यक्ष-मण्डल) का चुनाव हुआ। बोल्शेविकों के 14 सदस्य चुने गए। अन्य सभी दलों को 11 स्थान मिले। पुरानी कार्य-संचालन समिति मंच से हट गयी और बोल्शेविक नेताओं ने, जो अभी हाल तक रूस के बहिष्कृत एवं गैरकानूनी व्यक्ति थे, उनका स्थान ग्रहण किया। दक्षिणपंथी दलों ने, जिनमें मुख्यतः बुद्धिजीवी थे, प्रमाण-पत्रों और कार्यक्रम पर आपत्ति के साथ अपना हमला शुरू किया। वे वाद-विवाद में माहिर थे। वे कोरी बातों में ही अपना कमाल दिखाते थे। वे सिद्धान्त और कार्यपद्धति के बारे में सूक्ष्म प्रश्न उठाते थे।

तभी अचानक उस रात के अन्धकार को भेदने वाली प्रचण्ड गड़गड़ाहट से प्रतिनिधि सन्नाटे में आ गये, अपने स्थानों से उछल पड़े। यह तोप की दनदनाहट थी, क्रूजर 'अव्रोरा' ने शिशिर प्रासाद पर गोला फेंका था। दूरी के कारण गड़गड़ाहट धीमी एवं दबी-दबी सुनाई पड़ती थी, मगर वह सतत तथा क्रमबद्ध थी। यह गड़गड़ाहट पुरानी व्यवस्था के अन्त की सूचक थी, नई व्यवस्था के आगमन का अभिवादन-गीत थी। यह जनसमुदाय की आवाज थी, जो 'अव्रोरा' की गड़गड़ाहट के रूप में प्रतिनिधियों के सम्मुख यह माँग प्रस्तुत कर रही थी, **"सारी सत्ता सोवियतों को दो!"**। इस प्रकार वस्तुतः कांग्रेस के सम्मुख यह प्रश्न रखा गया : क्या प्रतिनिधि सोवियतों को रूस की सरकार घोषित करेंगे और इस नयी सरकार को वैधानिक आधार प्रदान करेंगे?

बुद्धिजीवी पीठ दिखा गये

बुद्धिजीवियों ने जन-समुदाय का साथ छोड़कर इतिहास का एक विस्मयकारी विरोधाभास और इसका एक अत्यन्त दुःखद परिच्छेद प्रस्तुत किया। प्रतिनिधियों में इस प्रकार के बीसियों बुद्धिजीवी थे। उन्होंने "अज्ञानता के अन्धेरे में भटकने वाले लोगों" को अपनी निष्ठा का लक्ष्य बना रखा था। "जनता के निकट जाना" उनके लिए कभी धार्मिक कृत्य था। उन्होंने जनता के लिए गरीबी, कारावास-दण्ड और निष्कासन की यंत्रणाएँ सहन की थीं। उन्होंने निष्चेष्ट जन-समुदाय में क्रान्तिकारी विचारों से जागरण की भावना पैदा की थी और उन्हें क्रान्ति के लिए प्रोत्साहित किया था। उन्होंने अटूट रूप से जनता के चरित्र एवं औदार्य की सराहना की थी। यों कहना चाहिये कि बुद्धिजीवियों ने जनता को देवता बना दिया था। अब जन-समुदाय देवता के आक्रोश एवं वज्र-ध्वनि के साथ विद्रोह के लिए सन्नद्ध हो रहा था और अब वह अपने विवेक के अनुसार दृढ़ता से काम करने को कटिबद्ध हो गया था। वह देवता के समान ही अपना स्वरूप प्रस्तुत कर रहा था।

पेत्रोग्राद में प्रतिक्रियावादी सरकार के मुख्यालय 'शीत प्रासाद' पर क्रान्तिकारी मजदूरदस्तों का धावा

परन्तु बुद्धिजीवी उस देवता को स्वीकारने को तैयार नहीं थे, जो उनकी बातों पर कान नहीं देता था और जो उनके वश से बाहर हो चुका था। बुद्धिजीवी अब नास्तिक हो गये थे। अपने भूतपूर्व देवता—जन-समुदाय में उनकी बिल्कुल आस्था नहीं रही थी। वे क्रान्ति करने के उनके अधिकार को स्वीकार नहीं करते थे।

जिन जन-समुदाय को बुद्धिजीवियों ने क्रान्ति के लिए जगाया था, उसे अब अपने ही लिए खतरनाक मानकर वे त्रस्त थे, भय से काँप रहे थे और आवेश से लाल-पीले हो रहे थे। वे इस अनधिकृत चेष्टा, पैशाचिक कृत्य और भयानक संकट कहते थे, उनके अनुसार यह रूस को अराजकता के गर्त में झोंकना था और यह "सरकार के खिलाफ अपराधमूलक विद्रोह था"। वे जनता के विरूद्ध हो गये थे, उसके विरूद्ध बकते-झकते और गालियाँ देते थे, उसकी आरजू-मिन्नत करते थे तथा आग-बबूला होकर अनाप-शनाप बकते थे। उन्होंने प्रतिनिधियों की हैसियत से इस क्रान्ति को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। उन्होंने इस कांग्रेस को यह अनुमति प्रदान करने से इनकार कर दिया कि वह सोवियतों को रूस की नयी सरकार घोषित करे।

कितनी बेमानी, कितनी बेतुकी बात थी यह! इस क्रान्ति को न मानना तो ज्वार-तरंग अथवा ज्वालामुखी के विस्फोट को न मानने के समान था। यह क्रान्ति सर्वथा अनिवार्य, अपरिहार्य थी। इसे सर्वत्र, बैरकों, खाइयों, कारखानों और सड़कों पर देखा जा सकता था। यहाँ, इस कांग्रेस में भी सैकड़ों मजदूर, सैनिक और किसान प्रतिनिधियों के माध्यम से क्रान्ति का स्वर औपचारिक रूप से गूँज रहा था। इस हॉल की इंच-इंच जगह को घेरे हुए, स्तम्भों और खिड़कियों के दासों पर चढ़े हुए, एक-दूसरे के साथ सटे हुए और भावनाओं की गर्मी से वातावरण को गर्माते हुए लोगों के माध्यम से क्रान्ति का अनौपचारिक रूप दिखाई दे रहा था।

लोग यहाँ इसलिए जमा थे कि उनके क्रान्तिकारी संकल्प की पूर्ति हो, कि कांग्रेस सोवियतों को रूस की सरकार घोषित करे। इस प्रश्न पर वे अटल थे। इस प्रश्न पर आवरण डालने के हर प्रयास, इस संकल्प को विफल करने अथवा इसे टालने की हर चेष्टा का आक्रोशपूर्ण विरोध किया जाता था।

दक्षिणपंथी पार्टियाँ इस प्रश्न पर लम्बे-लम्बे प्रस्ताव प्रस्तुत करना चाहती थीं। भीड़ व्याकुल थी। लोगों का कहना था - "अब अधिक प्रस्तावों की जरूरत नहीं है! अब अधिक भाषणों की आवश्यकता नहीं है! हम कार्य चाहते हैं! हम सोवियतों की सरकार चाहते हैं।"

बुद्धिजीवी अपनी परम्परा के अनुसार सभी दलों की संयुक्त सरकार के प्रस्ताव के आधार पर इस प्रश्न को समझौते से हल करना चाहते थे। उन्हें यह मुँहतोड़ उत्तर मिला, "केवल एक ही सहमिलन सम्भव है-मजदूरों, सैनिकों और किसानों की संयुक्त सरकार।"

मार्तोव ने "आसन्न गृह-युद्ध को टालने के ख्याल से समस्या के शान्तिपूर्ण समाधान" की अपील की। इस सुझाव के उत्तर में यह नारा गूँज उठा, "विजय! विजय!—एकमात्र सम्भावित हल—क्रान्ति की विजय है!"

अफसर कूचिन ने इस विचार को प्रस्तुत कर उन्हें आतंकित करने की कोशिश की कि सोवियतें अलग-थलग पड़ गई हैं और पूरी सेना इनके खिलाफ है। सैनिक गुस्से से चिल्ला उठे, "तुम झूठे हो! तुम फौजी हाई कमान की ओर से बोल रहे हो, खाइयों में पड़े सैनिकों की ओर से नहीं! हम सैनिकों की माँग है : 'सारी सत्ता सोवियतों को दो!'"

उनका संकल्प इस्पात के समान दृढ़ था। अनुनय-विनय से न तो यह झुक सकता था, न धमकियों से टूट ही सकता था।

अन्त में अब्रामोविच ने अंगारा बनते हुए चिल्लाकर कहा, "हम यहां मौजूद रहकर इन अपराधों के लिए जिम्मेदार नहीं होना चाहते। हम सभी प्रतिनिधियों से इस कांग्रेस से अलग हो जाने का अनुरोध करते हैं।" बड़ी ही नाटकीय भाव-भंगिमा के साथ वह मंच से नीचे आया और दरवाजे की ओर लपका। करीब अस्सी प्रतिनिधि अपने स्थानों से उठकर उसके पीछे-पीछे चल दिए।

त्रोत्स्की ने उच्च स्वर में कहा, "उन्हें जाने दो, जाने दो! वे बिल्कुल कूड़े-करकट के समान हैं और इतिहास के कचरे के ढेर में समाहित हो जायेंगे।"

ताने-बोलियों, उपहास और व्यंग्य-बाणों-"भगोड़े! गद्दार!" -के बीच बुद्धिजीवी सभा-कक्ष से बाहर चले गये और क्रान्ति से अलग हो गये। यह एक बहुत ही दुःखद घटना थी। बुद्धिजीवियों ने जिस क्रान्ति को जन्म देने में सहायता की थी, अब उन्होंने उसी से मुँह मोड़ लिया था, संघर्ष के कठिनतम क्षण में जनता से नाता तोड़ लिया था! यह सबसे बड़ी मूर्खता भी थी। वे सोवियतों को विलग नहीं कर सके, उन्होंने खुद अपने को अलग कर लिया था। सोवियतों को जन-समुदाय का अपार ठोस समर्थन प्राप्त होता जा रहा था।

सोवियतों को सरकार के रूप में घोषित किया गया

प्रति क्षण क्रान्ति की विजय की ताजी सूचनाएँ प्राप्त हो रही थीं-मन्त्रियों की गिरफ्तारी, राजकीय बैंक, तारघर, टेलीफोन-केन्द्र और फौजी हाई कमान के सदर-मुकाम पर कब्जे की खबरें मिल रही थीं। एक के बाद एक सत्ता के केन्द्र लोगों के कब्जे में आते जा रहे थे। पुरानी सरकार की नाम मात्र की सत्ता विद्रोहियों के हथौड़ों की चोट से खण्ड-खण्ड होकर गिर रही थी।

एक कमिसार ने, जो घोड़े की तेज सवारी के कारण हाँफ रहा था और जिसके कपड़ों पर कीचड़ के छींटे पड़े हुए थे, मंच पर चढ़कर यह सूचना दी, "त्सास्कोये सेलो की गढ़-सेना सोवियतों के पक्ष में है। वह पेत्रोग्राद के सिंहद्वारों की रक्षा के लिए मुस्तैद खड़ी है!" दूसरे कमिसार से यह सूचना मिली, "साइकिल सवार सैनिकों का बटालियन सोवियतों के साथ है। एक भी सैनिक अपने भाइयों का खून बहाने को इच्छुक नहीं है।" इसके बाद क्रिलेन्को हाथ में तार लिये, लड़खड़ाते हुए मंच पर चढ़ा और बोला, "बारहवीं सेना की ओर से सोवियत का अभिवादन! सैनिक समिति उत्तरी मोर्चे की कमान अपने हाथ में ले रही है।"

अन्ततः इस कोलाहलपूर्ण रात की समाप्ति पर वाद-विवाद

(पेज 10 पर जारी)

तूफ़ान की उस रात में स्मोल्नी

• अनातोली लुनाचार्स्की

स्मोल्नी* उज्जवल प्रकाश से देदीप्यमान था। उसके अनेकानेक गलियारों से भावावेशित लोगों के जत्थे तेज़ी के साथ आ-जा रहे थे। हर जगह ज़बरदस्त चहल-पहल थी, लेकिन सर्वाधिक उग्र जन-प्रवाह, भावोत्तेजित लोगों की वास्तविक बाढ़ वह थी जो सबसे ऊपर की मंजिल के गलियारे के अन्तिम छोर की तरफ़ बढ़ रही थी। वहाँ, पिछवाड़े के कमरे में सैनिक क्रान्तिकारी समिति का अधिवेशन चल रहा था। बाहर के कमरे में बैठी लड़कियाँ, थककर चूर होने के बावजूद, लोगों के प्रबल जमघट के साथ, धैर्य से जूझ रही थीं जो स्पष्टीकरणों और निर्देशों के लिए या हर तरह की शिकायतों तथा आवेदनों के लिए आये थे।

जब आप एक बार इस मानवीय भँवर में फँस जाते हैं तो देखते हैं कि आप भावावेशित चेहरों और किसी निर्देश या आदेश को ग्रहण करने के लिए फैले हाथों से घिरे हैं।

निर्देश और नियुक्तियाँ तत्काल, वहीं पर, की गयीं–वे सभी सर्वोपरि महत्व की होतीं। उन्हें शीघ्रतापूर्वक टाइपिस्टों को, जिनकी मशीनों की खट-खट कभी न रुकती, लिखाया जाता, किसी अधिकारी के घुटनों पर रखकर पेन्सिल से हस्ताक्षरित किया जाता और कुछ ही मिनटों के अन्दर कोई युवा कामरेड जिम्मेदारी को पाकर प्रसन्नचित्त रात के अँधेरे को चीरती, गर्दन तोड़ रफ्तार से चलती कार में बैठ कर चल पड़ता। एकदम पीछे स्थित कमरे में कुछ साथी एक मेज़ के गिर्द बैठे, रूस के विद्रोही नगरों को हर दिशा में लगातार तार भेज रहे थे। उनमें ऐसे आदेश थे जो उसी बिजली की तरह प्रभावी थे जिसके ज़रिए उन्हें भेजा जा रहा था।

मैं वहाँ किये गये काम के आश्चर्यजनक परिमाण को अभी भी विस्मयपूर्वक याद करता हूँ और अक्टूबर क्रान्ति के समय सैनिक क्रान्तिकारी समिति के क्रियाकलापों को मानवीय ऊर्जा की एक ऐसी अभिव्यक्ति मानता हूँ जो यह दर्शाती है कि एक क्रान्तिकारी के हृदय में उसका कैसा विपुल भण्डार संचित है और कि क्रान्ति के वज्रघोष से जागृत वह हृदय क्या करने में समर्थ है।

उस शाम स्मोल्नी संस्थान के श्वेत सभा-भवन में सोवियतों का दूसरा अधिवेशन शुरू हुआ। प्रतिनिधिगण विजयोत्सव की मनोदशा में थे। प्रबल उत्तेजना थी, लेकिन शीत प्रासाद के गिर्द जारी लड़ाई और समय-समय पर मिलने वाली अत्यन्त आशंकाजनक ख़बरों के बावजूद घबराहट का नामोनिशान भी नहीं था।

घबराहट न होने की बात मैं बोल्शेविकों और अधिवेशन के उस बहुत बड़े बहुमत के संदर्भ में कह रहा हूँ जो उनके पक्ष में था। इसके विपरीत दुर्भावी, सम्भ्रमित, अधीर दक्षिणपंथी "समाजवादी" तत्व भयाक्रान्त हो गये थे।

अन्त में अधिवेशन के प्रारम्भ होते ही प्रतिनिधियों की मनोदशा नितान्त स्पष्ट हो गयी। बोल्शेविकों के भाषण का प्रचण्ड उत्साह के साथ स्वागत किया गया। शीत प्रासाद के गिर्द जारी लड़ाई के बारे में सचाई बताने के लिए आये हुए साहसी युवा नौसैनिक की बातों को सराहनापूर्ण ढंग से सुना गया...

जब यह दीर्घ प्रतीक्षित समाचार मिला कि अन्तत : सोवियतों ने शीत प्रसाद पर कब्जा कर लिया है और कि पूँजीवादी मंत्रिगण गिरफ्तार कर लिये गये हैं, तो उसका वाहवाही के कभी खत्म न होने वाले कैसे तूफान के साथ स्वागत हुआ! उसी दौरान एक मेन्शेविक, लेफ्टिनेंट कूचिन, जिन्होंने उस समय सेना संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी, मंच पर खड़े हुए और अपने मोर्चे से सैनिकों को लौटा कर फ़ौरन पेत्रोग्राद लाने की धमकी देने लगे। उन्होंने पहली, दूसरी, तीसरी और इस तरह 12 वीं सेना तक (जिनमें एक विशेष सेना भी शामिल थी) की तरफ़ से सोवियत सत्ता के खिलाफ प्रस्ताव पढ़े और "ऐसे दुस्साहस" का ख़तरा उठाने की हिम्मत करने वाले पेत्रोग्राद के खिलाफ प्रत्यक्ष धमकी के साथ अपना भाषण समाप्त किया।

उनके शब्दों से कोई डरा नहीं। न इस घोषणा से ही कोई भयभीत हुआ कि किसानों का सम्पूर्ण सागर हमारे खि़लाफ़ हो जायेगा और हमें लील जायेगा।

लेनिन अपनी सहज स्वाभाविक अवस्था में थे; वे प्रसन्न थे, उन्होंने रुके बगैर काम किया और किसी कोने में नयी सरकार की वे आज्ञप्तियाँ लिखीं जो, जैसा कि आज हम जानते हैं, हमारे युग के इतिहास के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पृष्ठ बनने वाली थीं।

इन चन्द पंक्तियों में मैं जन-कमिसारों की पहली परिषद की रचना विधि के बारे में अपने संस्मरण जोड़ूँगा। यह कार्य स्मोल्नी के एक ऐसे छोटे कक्ष में सम्पन्न हुआ जहाँ कुर्सियाँ उन पर पड़े कोटों और टोपों से ढँक गयी थीं और हर कोई अपर्याप्त रूप से प्रकाशमान एक मेज़ के गिर्द भीड़ लगाये खड़ा था। उस समय हम पुनर्जीवित रूस के नेताओं का चयन कर रहे थे। ऐसा प्रतीत हुआ था कि चुनाव अकसर बहुत सरसरी तौर से हो रहा है और मुझे आशंका थी कि छाँटे हुए लोग, जिन्हें मैं अच्छी तरह से जानता था और जो मुझे विभिन्न विशेषज्ञताओं के लिए प्रशिक्षित नहीं जान पड़ते थे, आने वाले विराट कार्यों के लिए उपयुक्त नहीं थे। लेनिन ने मुझे खीझ के अन्दाज से टाल दिया और साथ ही मुस्कराये।

"यह फिलहाल, कुछ समय के लिए है," उन्होंने कहा, "फिर हम देखेंगे। हमें सभी पदों के लिए ज़िम्मेदार आदमियों की ज़रूरत है। यदि वे अनुपयुक्त सिद्ध हुए तो हम उन्हें बदल देंगे।"

वे कितने सही थे! यह सच है कि कुछ को प्रतिस्थापित किया गया पर अन्य अपने पदों पर बने रहे। और ऐसे कितने थे जो भीरुभाव से शुरुआत करने के बावजूद कालान्तर में अपने पदों के लिए सर्वथा योग्य सिद्ध हुए! यह सच है कि कुछ लोग (यहाँ तक कि वे भी जिन्होंने विद्रोह में भाग लिया था और महज़ दर्शक नहीं थे) विराट सम्भावनाओं और अनतिक्रमणीय लगने वाली कठिनाइयों को देखकर घबरा गये। लेनिन ने आश्चर्यजनक धीरता से कार्यों को करने की उस पद्धति का अध्ययन किया जिससे काम किये जाने थे, उन्हें ठीक उसी तरह अपने हाथ में लिया जैसे कोई अनुभवी मार्गदर्शक एकविराट समुद्री जहाज को चलाने की ज़िम्मेदारी सम्भालता है।

* स्मोल्नी–लेनिनग्राद में एक भवन का नाम। 1917 में महान अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति का मुख्यालय था; यहीं से लेनिन ने अक्टूबर सशस्त्र विद्रोह का संचालन किया था।

अमेरिकी फौजी मशीनरी का बर्बर नस्लवादी कारनामा

(पेज 12 से आगे)

फिर बस चालक ने उससे कहा, "तुम्हें इस पर सोचना चाहिए कि उन जगहों पर जब तुम ऐसे लोगों को लूटते देखोगे तो गोली मार देने का हुक्म मानना कितना उचित होगा।

इस फौजी शिविर में कई घण्टे यूँ ही गुजर गये। बाद में जब यह बस चालक क्षुब्ध होकर अपने बस के पास ही जमीन पर उनींदा लेटा हुआ था तो अचानक संगीनें ताने हुए पाँच फौजी पहुँचे और ऊँची आवाज में जगाने लगे। एक सिपाही ने हुक्म देते हुए कहा कि तुम लोग फौजियों को कुछ जगहों पर पहुँचाने के लिए तैयार हो जाओ।

इस हुक्म के एक घण्टे बाद सभी बसों में सिपाही लद गये। सभी हथियारों से लैस थे। कुछ बस ड्राइवरों ने सिपाहियों और अन्य बस चालकों से बात की कि वे सिपाहियों को ले जाने से इनकार कर दें लेकिन वे जोखिम मोल लेने के लिये तैयार नहीं हुए। बस चालक ने अपने पत्र में लिखा है कि उसने अन्य बस चालकों से कहा, "यह क्या बेहूदगी है, हम यहाँ न्यू ऑर्लियंस में सिपाहियों को ढोने नहीं आये थे जिससे वे लोगों को गोली मार देने के आदेश का पालन कर सकें। हम यहाँ लोगों को बचाने और उन्हें सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाने के लिये आये थे। हमें ऐसा करने से बिल्कुल इनकार कर देना चाहिए।" लेकिन आखिरकार सभी बस चालकों को मन में क्रोध लिए बेबस होकर सिपाहियों के हुक्म को मानना पड़ा। कई घण्टों तक सिपाहियों को ढोने के बाद आखिरकार उन्हें खाली बसें लेकर ह्यूस्टन वापस लौट जाना पड़ा।

अमेरिकी फौज ने इस जनपहलकदमी का अपहरण कर हत्या कर दी। अमेरिकी फौज का यह रवैया अमेरिकी शासक वर्ग और समूचे सत्ता तंत्र में आज भी गहरे में मौजूद नस्लवादी नफरत का एक उदाहरण भर है। न्यू ऑर्थियंस में तूफान और सैलाब मे जो लोग फँसे रह गयें थे वह लगभग सभी अफ्रीकी मूल की गरीब काली आबादी थी। अगर वहाँ गोरी आबादी फँसी होती तो अमेरिकी शासक वर्ग का यह रवैया कतई नहीं होता। जैसा कि पिछली 15 अक्टूबर को कैटरीना के कहर से बचाव व "राहत कार्यों में सरकार की लापरवाही के खिलाफ आयोजित एक विशाल प्रदर्शन को सम्बोधित करते हुए नेशन आफ इस्लाम के नेता लुईस फराखान ने कहा, "मुझे पक्का यकीन है कि अपनी छतों पर चढ़कर सहायता माँगने वाले लोगों का रंग अगर सफेद होता और आँखें नीली तो यकीनन राहत और बचाव का कार्य बिल्कुल समय पर शुरू हो जाता।"

तूफान से विस्थापित काली आबादी अपनी रोजी-रोटी के लिए अमेरिका के विभिन्न शहरों में बिखर गयी है। हर जगह स्थानीय पुलिस और अन्य प्रशासनिक अधिकारी इनके साथ अपराधियों सा सुलूक कर रहे हैं। मीडिया में इस विस्थापित आबादी के खिलाफ बारीकी में रंगभेदी प्रचार इस समय जोरों पर है। यहाँ तक कि खुद जार्ज बुश इस प्रचार को हवा दे रहा है। लेकिन यह तस्वीर का एक पहलू है। दूसरा पहलू यह भी है कि अमेरिका की आम गोरी आबादी ने कैटरीना पीड़ितों के प्रति सहानुभूति दिखायी है और मदद के लिए अपना हाथ बढ़ाया है। यह इस बात का उदाहरण है कि मुसीबत के समय किस तरह मेहनतकश लोगों और उत्पीड़ित जनों के बीच भाईचारा विकसित होता है। अमेरिका की आम गोरी आबादी भी अमेरिकी शासकों की लुटेरी नीतियों के खिलाफ है। अन्याय और असमानता की जिस बुनियाद पर दुनिया का यह "स्वर्ग" खड़ा है, उसके तल में जो अँधेरा है वह आम गोरी आबादी की नजरों से छुपा कैसे रह सकता है। अमेरिकी शासक वर्ग चाहे जितना जहरीला प्रचार कर ले वह अपने देश की आम आबादी की न्याय और समानता की आकांक्षाओं और तकाजों का अपहरण नहीं कर सकता।

–योगेश पन्त

एक नयी ऐतिहासिक तिथि

(पेज 9 से आगे)

और संकल्पों के टकराव के बाद यह स्पष्ट एवं सुगम घोषणापत्र स्वीकृत हुआ :

"अस्थाई सरकार अपदस्थ कर दी गई। मजदूरों, सैनिकों और किसानों के भारी बहुमत की आकांक्षा के अनुकूल सोवियतों की यह कांग्रेस सत्ता ग्रहण कर रही है सोवियत सरकार तत्काल सभी राष्ट्रों के सम्मुख जनतांत्रिक शान्ति और सभी मोर्चों पर तत्काल विराम-संधि का प्रस्ताव रखेगी। यह बिना किसी मुआवजे के जमीनों का हस्तान्तरण सुनिश्चित करेगी ..." आदि।

खुशी का पारावार न रहा! एक-दूसरे को बाँहों में लिये लोगों की आंखों से खुशी के आँसू छलक रहे थे। सन्देशवाहक तेजी से सूचनाएँ पहुँचाने के लिए रवाना हो गये थे। तार-टेलीफोन लगातार काम कर रहे थे। लड़ाई के मोर्चों की ओर मोटरगाड़ियाँ तेजी से भागी जा रही थीं। नदियों और मैदानों को पार करते हुए विमान द्रुत गति से उड़ते चले जा रहे थे। रेडियो से समुद्रों के पार सूचनाएँ पहुँच रही थीं। सभी साधनों से इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संवाद को प्रेषित किया जा रहा था।

क्रान्तिकारी जन-समुदाय के संकल्प की विजय हुई थी। सोवियतों ने सरकार का रूप ले लिया था।

सुबह 6 बजे ऐतिहासिक अधिवेशन समाप्त हुआ। प्रतिनिधिगण थकावट से चूर थे, रात भर जगने के कारण उनकी आँखें धँसी हुई थीं। फिर भी वे बहुत खुश थे और पत्थर की सीढ़ियों और दरवाजों को लाँघते हुए स्मोल्नी के बाहर निकल रहे थे। बाहर अभी अँधेरा और बड़ी सर्दी थी, मगर पूर्व में लाल पौ फट रही थी।

न्यूनतम वेतन बढ़ाने का लाभ किसको

(पेज 1 का शेष)

लेकिन फाइलों में शोभा पाने के अलावा मजदूरों को इस कानून का कोई लाभ मिल पाया है? मजदूरों की भारी आबादी तो यह भी नहीं जानती कि उसके अधिकार क्या हैं? वैसे भी प्रावधान चाहे जो भी हो दण्डित तो मजदूर ही होता है, पूँजीवादी निजाम में प्रबन्धन के दण्डित होने का प्रश्न ही नहीं उठता, भले ही उसने जितने भी कानून तोड़े हों।

सरकार द्वारा गठित दूसरे श्रम आयोग की रिपोर्ट (2002) तक यह बात बताती है कि पूर्व में घोषित न्यूनतम मजदूरी का अनुपालन नहीं होता रहा है। असंगठित क्षेत्र में इसकी बेहद बुरी स्थिति की चर्चा करते हुए रिपोर्ट में लिखा है - *"श्रम मंत्रलय के लेबर ब्यूरो द्वारा लगाया गया एक मूल्यांकन अध्ययन दिखलाता है कि सर्वेक्षित राज्यों में खेत मजदूरों को पूरी न्यूनतम मजदूरी नहीं मिल रही है। सर्वेक्षित राज्य थे कर्नाटक, राजस्थान, आंध्रप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार और गुजरात। यही हाल निम्न तकनीक वाले श्रम गहन हलकों में भी है।..."*

आयोग वामपंथी गठबन्धन वाले राज्य के बारे में भी लिखता है *"पश्चिम बंगाल में बीड़ी मजदूरों को दी जा रही वास्तविक मजदूरी है हर 1000 बीड़ी पर 35 रुपये जबकि सरकार द्वारा तय न्यूनतम मजदूरी 70 रुपये है।..."*

तय है कि अतीत की तरह घोषित यह न्यूनतम मजदूरी भी महज कागजी घोड़ा साबित होगा। सरकार एक तरफ तो उदारीकरण के नाम पर मालिकों को लूट की खुली छूट दे रही है, दूसरी तरफ मजदूरों को भरमाने के लिए ऐसे विधेयक पारित कर रही है। यही है पूँजीवादी समाज का ढकोसला।

उन्नीस सौ सत्रह, सात नवम्बर

मर रहा है रूसी साम्राज्य
शीत प्रासाद में सुनाई नहीं देती लहँगों की रेशमी सरसराहट
और न ही ज़ार की ईस्टर की प्रार्थनाएँ,
न ही साइबेरिया की ओर जाती सड़कों पर ज़ंजीरों का क्रन्दन...
मर रहा है, रूसी साम्राज्य मर रहा है...

अब और नहीं भीगेंगी पोमेचिकों की पीली मूँछें
वोदका के गिलासों में
भूख से मरते मुझिकों की ताम्बई दाढ़ियाँ
अब और नहीं जलेंगी
काली मिट्टी पर चुल्लू भर रक्त की तरह
और आज
मौत
जो बढ़ रही है रूसी साम्राज्य की ओर
नहीं है उसका पीला सिर
पाँचा नहीं बल्कि
उसके हाथों में है एक ओजस्वी लाल झण्डा
और उसके गालों पर युवापन की रक्ताभा

उन्नीस सौ सत्रह
सात नवम्बर
अपने धीर-मन्द्र स्वर में
लेनिन ने कहा :
"कल बहुत जल्दी होता और कल बहुत दूर हो चुकी रहेगी,
समय है आज।"
मोर्चे से आते हुए सैनिक ने
कहा, "आज!"
खन्दक जिसने मार डाला था भूख से मौत को, उसने
कहा, "आज"
अपनी भारी, इस्पाती काली
तोपों से, अव्रोरा ने
कहा "आज!"
कहा "आज।"
और यूँ दर्ज की बोल्शेविकों ने इतिहास में
इतिहास के सर्वाधिक गम्भीर मोड़-बिन्दु की तारीख :
उन्नीस सौ सत्रह
सात नवम्बर!

• नाज़िम हिकमत (1925)

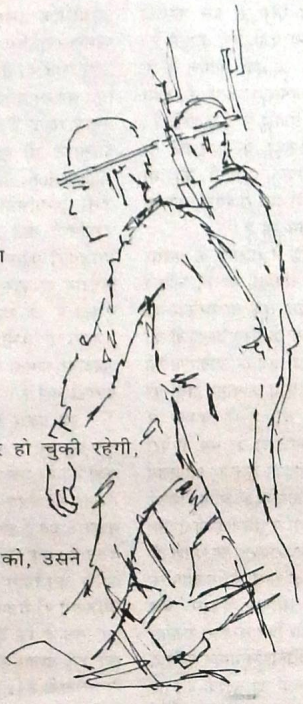

7 नवम्बर : जीतों के दिन की शान में गीत

(1941 में लिखी गई लम्बी कविता का एक अंश)

इस मुबारक दिन तुम्हें शुभकामनाएँ देता हूँ सोवियत संघ,
विनम्रता के साथ। मैं एक लेखक और कवि हूँ
मेरे पिता रेल मजदूर थे। हम हमेशा गरीब रहे।
कल मैं तुम्हारे साथ था, बहुत दूर भारी बारिशों वाले अपने
छोटे से देश में। वहाँ तुम्हारा नाम लोगों के दिलों में जलते-जलते
सुर्ख हो गया
जब तक वह मेरे देश के ऊँचे आकाश को छूने नहीं लगा।

आज मैं उन्हें याद करता हूँ, वे सब तुम्हारे साथ हैं।
फैक्ट्री दर फैक्ट्री, घर दर घर,
तुम्हारा नाम उड़ता है लाल चिड़िया की तरह।
तुम्हारे वीर यशस्वी हों और तुम्हारे खून की
हरेक बूँद। यशस्वी हो हृदयों की बह-बह निकलती बाढ़
जो तुम्हारे पवित्र और गौरवपूर्ण आवास की रक्षा करते हैं।

यशस्वी हो वह बहादुरी भरी और कड़ी रोटी,
जो तुम्हारा पोषण करती है जबकि वक्त के द्वार खुलते हैं।

ताकि जनता और लोहे की तुम्हारी फौज गाते हुए
राख और उजाड़ मैदानों के बीच से
हत्यारों के खिलाफ कर सके मार्च ताकि
चाँद जितना विशाल एक गुलाब
रोप सके जीत की सुन्दर और पवित्र भूमि पर।

• पाब्लो नेरूदा

"मानवीय" चिल्लाने से नहीं बदलेगा दानवीय चेहरा

पुलिसिया दरिन्दगी के किस्से

"पुलिस को अत्याधुनिक बनाने के साथ मानवीय और लोकतान्त्रिक बनाये जाने की जरूरत है। खाकी वर्दी वालों को तानाशाही का चेहरा बदलकर मित्रवत छवि बनानी होगी, ताकि थानों में शिकायतकर्ता अधिक सहज महसूस कर सकें।" ये बयान पिछले दिनों केंद्रीय गृहमंत्री शिवराज पाटिल ने पुलिस महानिदेशकों और पुलिस महानिरीक्षकों के सम्मेलन में दिए।

कितनी मासूमियत से गृहमंत्री महोदय व्यवस्था के कलपुर्जों की असलियत पर पर्दा डालने की कोशिश कर रहे हैं। कौन नहीं जानता है कि ये पुलिस फौज और नौकरशाही औपनिवेशिक भारत की कोख से जन्मे हैं। आज भी वही सी.आर.पी.सी., आई.पी.सी. की धाराएँ हूबहू लागू हैं। या आगे बढ़कर कहा जाये तो भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था अंग्रेजों से भी ज्यादा निरंकुश और कठोर कानूनों के साथ पेश आती रही है। इन कानूनों को अमली जामा पहनाया जाता रहा है और इन्हीं कलपुर्जों के माध्यम से। फिर भी गृहमंत्री महोदय इनकी 'मानवीयता' और 'मित्रवत' व्यवहार की चर्चा कर रहे हैं। उधर मुम्बई पुलिस, दो बलात्कारी कान्स्टेबलों के कुकृत्यों का खुलासा होने के बाद अपनी छवि को दागदार होने से बचाने के लिए दीपावली समारोह न मनाने का नाटक ही तो कर रही है।

यह यूँ ही नहीं है कि अंग्रेजों की दो सौ वर्षों की गुलामी के दौरान जितने हिन्दुस्तानी पुलिसिया दमन के शिकार हुए थे उससे ज्यादा 58 वर्षों की आजादी के दौरान हो चुके हैं। कोई भी दिन ऐसा नहीं है जब खाकी वर्दी धारियों का अमानवीय चेहरा सामने न आता हो।

पिछले माह दो पुलिस के जवानों ने चलती ट्रेन से एक चाय बेचने वाले बालक को बाहर फेंक दिया। यह पूरी घटना इस प्रकार है। स्कूल जाने और पढ़ने की उम्र में सलीम अंसारी नाम का यह बालक सद्भावना एक्सप्रेस में फेरी लगाकर चाय बेचने का काम करता था। इसकी उम्र महज 14 वर्ष थी। पिता रिक्शा चलाकर परिवार का पेट पालते हैं। अभाव और भूख ने इस कच्ची उम्र के लड़के को पेट भरने के लिए सड़क पर ला पटका था। हादसे वाले दिन सलीम हाजीपुर स्टेशन के निकट दिनभर का काम खतम करके ट्रेन में बैठा अपनी रोजी के पैसे गिन रहा था, जब घूमते हुए दो वर्दी धारियों की नजर उस पर पड़ी। पहले तो उन्होंने डाँट-डपट कर उसे अपने सेल में लिया और फिर उसकी सारी कमाई को छीन लिया। कुल जमा 200 रुपये और कुछ पैसे थे। सलीम अंसारी ने डरते-डरते यह पूछ लिया कि उसके पैसे क्यों छीन लिये, उसका अपराध क्या है? बस इतनी सी बात पर इन दो खाकी वर्दी वालों ने सलीम को चलती ट्रेन से बाहर फेंक दिया। उसका एक पैर ट्रेन के चक्के में फँस कर कट गया, सिर लहूलुहान हो गया। आस-पास के लोगों ने मिलकर उसे अस्पताल पहुँचाया। हालत की गम्भीरता को देखते हुए उसे पटना मेडिकल कॉलेज भेज दिया गया। लेकिन अस्पताल भी भुक्तभोगियों का नहीं, पैसे वालों का इलाज करता है। सलीम के गरीब माँ-बाप क्या बेचकर बेटे का इलाज कराते—जरूरी दवा और खून कहाँ से लाते? खाकी वर्दी की दहशत में डूबे सलीम की हालत बिगड़ती गयी और उस गरीब घर का इकलौता चिराग डूब गया। अब पुलिस अधिकारी मीडिया में खबर लीक होने से परेशान हैं। आखिर अपनी 'मानवीय' छवि की कैसे बचायें? वे सलीम अंसारी के पिता पर बयान बदलने के लिए साम-दाम-दण्ड-भेद हर हथकण्डे का इस्तेमाल कर रहे हैं। यह है इनकी 'मित्रता' का ताजा नमूना।

इनकी बर्बरता की बड़ी मिसालें तो जग जाहिर हैं। दैनिक क्रियाकलाप में ये आम जन के साथ कैसे पेश आते हैं उसकी एक और बानगी प्रस्तुत है। पिछले 18 अक्टूबर को नई दिल्ली के नंद नगरी इलाके में दो युवक (सरफराज और रिजवान) बिना हेलमेट पहने दो पहिया वाहन से कहीं जा रहे थे। हेलमेट चेकिंग के नाम पर पुलिस वालों ने उन्हें रोका, वह रुकते कि पुलिस वालों ने फेंक कर डण्डे से हमला किया और वे दोनों नौजवान बाइक सहित सड़क पर गिर गये और बुरी तरह से जख्मी हो गये। इसमें एक की हालत काफी गम्भीर है।

ऐसी ही एक घटना में करावल नगर, दिल्ली निवासी मजदूर परमेश्वर दयाल की मौत पुलिस हिरासत में हो गयी थी।

और तो और पुलिस के मानवीय और चारित्रिक गुणों का बखान कहाँ तक किया जाय। ट्रेन हादसा हो या दंगा इनका पहला काम होता है घायल या मृत के पॉकेट से पैसे, घड़ी और जेवरातों को उड़ाना। और काम बाद में आते हैं। अब इन्हें किस संज्ञा से विभूषित किया जाय। कफनखसोट, बहशी या गिद्ध ये सारे शब्द इन कृत्यों के सामने फीके लग रहे हैं। इस लुटेरी व्यवस्था के कलपुर्जों द्वारा की गयी कारस्तानियों का सुराग लगा पाना भी कठिन है, ये कुछेक हादसे हैं जो लीक हो जाते हैं। इसमें अब कोई पर्देदारी नहीं रह गयी है कि इस घिनौनी और निर्दयी 'मानवीय' चेहरों वाली खाकी से किसके खून की गंध आती है?

दरअसल मौजूदा तंत्र का यह दानवीय चेहरा पूँजीवादी व्यवस्था की हित रक्षा में सन्नद्ध नये गुलामों का संगठित दस्ता है। जहाँ एक तरफ पूँजीवादी लूट को कानूनी स्वरूप प्रदान किया गया है—वहीं दूसरी तरफ ये वहशी दरिन्दे आम जन में भय और दहशत फैलाकर निरंकुश लूट को जारी रखने का रास्ता साफ करते हैं। लेकिन सच यह है कि यह हुकूमत जनता के कोप से भयभीत है, इसीलिये जहाँ एक तरफ जेलों को अत्याधुनिक किया जा रहा है नयी पुलिस बटालियनें खड़ी की जा रही हैं, उन्हें अत्याधुनिक हथियारों से लैस किया जा रहा है, वहीं लोगों में भ्रम की चादर फैलाते हुए इनके लिए 'मित्र पुलिस' का नारा या 'मानवीय' बनने की सलाह या दीवाली समारोह न करने की मुम्बई पुलिस की घोषणा के बहाने अपने दानवीय चेहरे को छिपाने का प्रयास किया जा रहा है

—आशीष कुमार

रोजगार दफ्तरों का निजीकरण और रोजगार का सपना बेचते नये सौदागर

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। मित्र मिले। काफी दिनों से नौकरी की तलाश में भटक रहे थे। मिलते ही बोले नौकरी मिल गयी है। यहीं सिडकुल क्षेत्र के एक कारखाने में। पूछने पर बताया कि एक मैडम की मेहरबानी है। उन्होंने ऑफिस खोल रखा है नौकरी दिलाने का। कमीशन लेती हैं और नौकरी दिलाती हैं। मैने पूछा स्थायी तो हो ना। बोले स्थायी-अस्थायी का चक्कर नहीं है। बस कम्पनी ने रखा है। लेटर तो नहीं दिया है लेकिन ड्यूटी पूरी मिलती है। ठेकेदारी वाले मजदूरों से भिन्न हूँ मैं।

एक और मित्र मिले। खटीमा के एक कारखाने में 15 साल से काम करते थे। छँटनी हुई और सड़क पर आ गये। तो मित्र ने एक पेपर कटिंग दिखलाया। गाजियाबाद के एक प्लेसमेण्ट कार्यालय का पता था और नौकरी दिलाने का वायदा। उनकी माँग पर मित्र खरे उतरते थे। सो मित्र गाजियाबाद जाने की तैयारी में जुट गये।

मैं सोच में पड़ गया। सरकार तो बेरोजगारों को रोजगार देने का काम निजी हाथों में देने की कवायद कर रही है और यहाँ तो निजी रोजगार चैनल पहले ही खुले हुए हैं। यह क्या गड़बड़ झाला है? इसकी गहराई में जाने पर उदारीकरण का एक और सच सामने आया।

रोजगार कार्यालय के निजीकरण की दिशा में कदम बढ़ा चुकी केन्द्र सरकार का दावा है कि देश में निजी रोजगार कार्यालय खोले जाने से रोजगार सम्बन्धी सूचना सेवाओं में प्रतियोगिता बढ़ेगी और इसके फलस्वरूप ये सेवायें बेहतर होंगी। यानी देश में मौजूद तीस करोड़ बेरोजगारों की फौज को लूटने के एक नये तंत्र को कानूनी मान्यता देने के साथ ही रोजगार दफ्तरों में काम करने वालों की भी छुट्टी। केन्द्रीय श्रम मंत्रालय के मातहत देश भर में चलने वाले 932 कार्यालयों में कार्यरत हजारों नौकरियाँ समाप्त।

वैसे देखें तो इन रोजगार कार्यालयों से रोजगार मिलना बहुत दूर की बात बन चुकी है—कारण की सार्वजनिक क्षेत्र में नौकरियों के दरवाजे बेहद सिकुड़ चुके हैं और निजी क्षेत्र में ठेकेदारी या जॉब काण्ट्रैक्ट का दौर चल रहा है। यही नहीं देश के सर्वोच्च न्यायलय ने अपने एक फैसले में रोजगार कार्यालयों द्वारा दिये गये नामों की सूची में से अपने उम्मीदवार चुनने की सार्वजनिक कम्पनियों की बाध्यता को ही समाप्त कर दिया था।

अब सरकारी रोजगार कार्यालयों की स्थिति देखें। यहाँ एक हद तक शिक्षित बेरोजगारों को ही नौकरी के रिक्त स्थानों और अवसरों की सूचनाएँ मिलती रही हैं। यहाँ अशिक्षित-अल्पशिक्षित भारी आबादी के लिए कोई सुविधा नहीं रही है। एक अरब की आबादी वाले इस देश में, जहाँ तीस करोड़ से ज्यादा बेरोजगार हैं, वहाँ पूरे देश में महज 932 रोजगार कार्यालय हैं। और यहाँ भी पंजीकरण के बावजूद नौकरी की कोई गारण्टी नहीं है। बेरोजगारों की इस भारी फौज से बमुश्किल पाँच से दस फीसदी आबादी अपना पंजीकरण कराती है। इसमें भी वह आबादी शामिल है जो शिक्षित बेरोजगार योजना के तहत लोन लेने के प्रयास में जुटी होती है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार दो फीसदी पंजीकृत युवाओं को भी रोजगार कार्यालय रोजगार मुहैय्या कराने में अक्षम रहे हैं।

यूँ तो देश में रोजगार के अवसर पहले से ही सीमित रहे हैं, लेकिन आजादी के बाद एक तो सरकार को अपनी मशीनरी के लिए कलपुर्जों की और सार्वजनिक क्षेत्र के उपकरणों को खड़ा करने के लिए कामगार हाथों की आवश्यकता थी, दूसरे जनता में तथाकथित समाजवाद का भ्रम भी पैदा करना था। लिहाजा रोजगार कार्यालय कानून 1959 अस्तित्व में आया। पिछले लगभग दो दशक से (निजीकरण-छँटनी-तालाबन्दी-विनिवेशीकरण-ठेकाकरण की प्रक्रिया बढ़ने के साथ ही) रोजगार के पहले से ही सीमित अवसर और सिमटते गये और फिर सरकारी रोजगार दफ्तरों को औचित्यहीन बनाने व निजी रोजगार कम्पनियों को बढ़ावा देने का काम बढ़ता गया।

रोजगार उपलब्ध कराने के लिए निजी कम्पनियों की अवधारणा पुरानी है। उदारीकरण के इस दौर में ये दुकानदारियाँ बहुत तेजी से फल-फूल रही हैं। जगह-जगह, विशेष रूप से औद्योगिक इलाकों, महानगरों में प्लेसमेण्ट एजेन्सियाँ कुकुरमुत्तों की तरह उगने लगी हैं। ये एजेंसियाँ नौकरी के लिए भटकते बेरोजगारों पर गिद्ध दृष्टि लगाये रखती हैं। इसके अलावा कई वेबसाइट भी खुली हुई हैं जिनमें monsterjobs.com,timesjobs.com जैसी कम्पनियाँ शामिल हैं। ये कम्पनियाँ मोटे असामी (पैसे वाले बेरोजगार) फाँसती हैं। सबसे निचले पायदान पर कारखानों के ठेकेदारों के एजेण्ट हैं, जो ठेके में रखने के लिए मजदूरों से कमीशन लेते हैं। यहाँ ज्यादातर मामलों में रोजगार की कोई गारण्टी नहीं है।

इस प्रकार रोजगार के नाम पर लूट का पूरा एक तंत्र विकसित हो चुका है। मेरे एक जानने वाले हैं। एक रोजगार कार्यालय के बाहर इन्फॉर्मेशन सेण्टर चलाते हैं और नौकरियों का फार्म बेचते हैं। एक बार कहने लगे कि 'मैं अपनी बेरोजगारी दूर करने के लिए बेरोजगारों को रोजगार का सपना बेचता हूँ।' सच है कि पूँजीवादी समाज में सब कुछ बाजार और मुनाफे के लिए ही तो होता है।

बात कुछ वर्ष पूर्व की है। उत्तर प्रदेश सरकार का कोष एकदम खाली था (भारी-भरकम मंत्रिमण्डल, सैकड़ों लालबत्तियों, विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा आदि पर खर्चों का अम्बार जो है!), बैंकों से भी ओवरड्राफ्टिंग की सीमा पार हो चुकी थी, सो राज्य सरकार ने बेरोजगारों से वसूली का एक नायाब तरीका निकाला। समूह 'ग' में भर्ती के नाम पर बेरोजगारों से सरकार ने भारी धन उगाही की (इतनी कि राज्य कर्मचारियों के एक माह का वेतन निकल गया)। रोजगार कितनों को मिला, इसको तो कोई पूछने वाला था नहीं, लेकिन सरकार की कमाई हो गयी — वह भी एक नम्बर में।

तो जब सरकार ही ऐसे कृत्यों में लिप्त हो तो फिर निजी एजेंसियाँ ऐसा क्यों न करें? बाजार और मुनाफे के तंत्र में सब कुछ जायज है।

रोजगार के नाम पर लूट का यह सिलसिला तभी समाप्त हो सकता है, जब रोजगार के अवसर सुलभ हों, जब नौकरी के लिए चप्पलें घिसने में ही नौजवानी खत्म न हो जाय और जब नौकरीशुदा लोगों पर छँटनी की तलवार न लटकती रहे। और ऐसा इस पूँजीवादी लुटेरी निजाम में सम्भव नहीं है।

—आकाश दीप

अमेरिकी फौजी मशीनरी का बर्बर नस्लवादी कारनामा

तूफान पीड़ितों को बचाने पहुँचे दल का अपहरण किया

कैटरीना तूफान की शिकार न्यू ऑर्लियंस शहर की आबादी के प्रति अमेरिकी सत्ताधारी वर्ग की आपराधिक संवेदनहीनता की जो खबरें-रिपोर्टें बुर्जुआ मीडिया से छन-छनकर आ रही हैं वे समूची तस्वीर पर सिर्फ धुँधली रोशनी ही डालती हैं। असल तस्वीर अत्यन्त भयावह है जो जनता की मीडिया के जरिये धीरे-धीरे उभरकर सामने आ रही है। अमेरिका के एक लोकप्रिय क्रान्तिकारी साप्ताहिक अखबार 'रिवोल्यूशन' ने दो अक्टूबर 2005 अंक में एक ऐसी घटना को उजागर किया है जो अमेरिकी शासन व्यवस्था में आज भी गहरे तक जड़ जमाये नस्लवादी नफरत की एक बानगी पेश करती है।

जब अमेरिकी आम अवाम ने देखा कि सरकारी मशीनरी ने तूफान और सैलाब में फँसे दसियों हजार लोगों (जिनमें अधिकांश अफ्रीकी मूल के काले लोग थे) को उनके हाल पर छोड़ दिया है तो जन संवेदनशीलता जन पहलकदमी के रूप में सामने आने लगी। होस्टन स्कूल के 94 बस चालकों ने अपनी बसों के साथ तूफान और सैलाब में फँसे लोगों को बाहर निकालकर सुरक्षित स्थानों तक पहुँचाने के लिये प्रस्ताव किया। स्कूल के अधिकारियों से इजाजत लेने की बोझिल औपचारिकताओं के बाद जब आखिरकार वे अपने बचाव मिशन पर रवाना हुए तो उन्होंने सोचा भी न था कि उन्हें बैरंग वापस लौटना पड़ेगा। लेकिन अफसोस कि ऐसा ही हुआ।

उन्होंने उदात्त मानवतावादी भावनाओं से ओतप्रोत होकर अपने मुसीबतजदा भाइयों की मदद का फैसला लिया था। इसके लिए उन्होंने स्कूल अधिकारियों से पैसे की माँग नहीं की। उनके पास बस चलाने का हुनर था और वे जल्दी से जल्दी बस लेकर जिन्दगी और मौत से जूझ रहे अपने भाइयों के पास पहुँच जाना चाहते थे। जब स्कूल अधिकारियों ने परीक्षाओं आदि के बहाने से बचाव मिशन में अड़ंगेबाजी शुरू की तो एक बस चालक ने खीझकर कहा कि स्कूलों को बन्द कर दो, स्कूल के कैलेण्डर को दो दिनों के लिए खिसका दो या क्रिसमस की छुट्टियाँ दो दिन कम कर दो, लेकिन हमारे मिशन को सप्ताह की छुट्टी के लिए मत टालो। यह सारी कहानी इस बस चालक ने पत्र के जरिये 'रिवोल्यूशन' अखबार के कार्यालय लिखकर भेजी।

उसने लिखा कि जब हम ह्यूस्टन से रवाना हुए तो सब बेहद उत्तेजित थे। सभी बस चालक जल्दी-जल्दी वहाँ पहुँच जाना चाहते थे जहाँ लोग सैलाब में फँसे हुए थे। लेकिन रास्ते में उन्हें कई फौजी चेकपोस्टों से गुजरना पड़ा जहाँ बेमतलब की छानबीन में कई कीमती घण्टे गँवा दिये गये। न्यू ऑर्लियंस शहर पहुँचने के बाद बस चालकों के कारवाँ को 45 मिनट तक शहर के एक हिस्से से दूसरे तक निरर्थक दौड़ाया गया और आखिर में सभी बसों को एक अस्थायी शिविर के पास ले जाकर खड़ा कर दिया गया। इस शिविर में हजारों फौजी थे। एम-16 राइफलों से लैस। गोलाबारूद से भरी हुई सैकड़ों पेटियाँ और टैंक भी वहाँ मौजूद थे। कई चारपाइयों पर टाँगें पसारे आराम फरमा रहे थे और कई झुण्डों में बैठकर ताश खेल रहे थे। कुछ फौजियों ने बस चालकों को बताया कि वे तैनाती के इन्तजार में तीन-चार दिनों से यहाँ पड़े हुए हैं।

इस शिविर का वर्णन करते हुए में बस चालक ने लिखा है : "मैं एक फौजी के पास जाकर पूछा ; "तुम्हें क्या लगता है कि तुम यहाँ क्या करने आये हो।" इस सिपाही के कमर पर एक बन्दूक लटकी हुई थी, हाथ में राइफल थी और उसके गालों की उभरी हड्डियों पर काला रंग पुता हुआ था जिससे उसका चेहरा भयावह लग रहा था। उसने कहा, "देखो, हमारे बैज पर क्या लिखा है? इस पर लिखा है, तलाश करो, बचाओ, सुरक्षित स्थान पर पहुँचाओ।" इस पर बस चालक ने सिपाही से कहा, अगर तुम सचमुच वही करने आये हो जो तुम्हारे बैज पर लिखा है तो तुम्हें अपने चेहरे को साफ कर लेना चाहिए, अपनी बन्दूकें जमीन पर रख देनी चाहिए और तब वहाँ जाना चाहिए जहाँ लोग कई दिनों से फँसे पड़े हैं। क्योंकि अगर तुम और तुम्हारे जैसे दिखने वाले दूसरे फौजी अपने हथियारों और भयानक चेहरों के साथ तूफान पीड़ितों के पास जायेंगे तो कोई यह नहीं सोचेगा कि तुम उनकी मदद के लिये गये हो। वे यह सोचेंगे कि तुम उनके खिलाफ जंग लड़ने गये हो, जो काम सचमुच तुम कर रहे हो। तुम वह नहीं कर रहे हो जो तुम्हारे बैज पर लिखा है। लोग टीवी पर यह सुनेंगे कि चूँकि तुम्हें 'गोली मार देने' का हुक्म मिला हुआ है, इसलिए जब किसी ने तुम्हारे ऊपर गोली चला दी तो तुमने पलटकर गोली चलायी और सड़क पर उसे मार गिराया। इस समय लोगों को जरूरत है मदद की उनकी जरूरत यह है कि हम उन लोगों के पास जायें और उन्हें सुरक्षित स्थानों पर पहुँचायें, न कि इन सब हथियारों की।"

बस चालक ने पत्र में आगे लिखा है कि इनमें से बहुत से फौजी इराक में कत्ल-ओ-गारत मचाने वाले उत्पाती फौजियों जैसे थे। उनमें से एक ने इस बस-चालक से कहा, "तुम एक गैर फौजी होने के नाते वह नहीं समझ सकते जो हम समझ रहे हैं। वे ऐसे लोग हैं जिन्हें जेल में होना चाहिए था। वे बलात्कार कर रहे हैं, स्टोरों को लूट रहे हैं। "इस पर बस चालक से चुप नहीं रहा गया। वह बोल उठा, "अगर तुम्हारा परिवार उस नारकीय स्थिति में पड़ा होता, और तुम देखते कि कुछ स्टोर ऐसे दिख रहे हैं जो सैलाब में नहीं डूबे हैं, तो तुम यह बात कहने के लिए मेरे पास खड़े नहीं होते। तुम उस स्टोर की खिड़की तोड़ते और वहाँ जो भी खाने-पीने का सामान मिलता अपने परिवार के लिए ले आते। तुम मुझे बताओ, क्या तुम इस परिस्थिति में ऐसा नहीं करते।" इस पर फौजी बोला, "तुम्हारी बात में दम है, तुम सही हो।"

(पेज 10 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग: कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक: डा. दूधनाथ, मुकुल • सम्पादकीय पता: 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 • सम्पादकीय उपकार्यालय: जनगण होम्यो सेवासदन, मयांदपुर, मऊ